मुक्ति संग्राम

वर्ष 1 • अंक 8 • अप्रैल 2024 • मासिक • क़ीमत 10 रुपए

चुनावी बांड खुलासों से पूँजीवादी चुनावी खेल एक बार फिर हुआ बेपर्द!
फिर से सामने आया पूँजीवादी लोकतंत्र का गंदा, घिनौना, भ्रष्ट चेहरा!

मेहनतकश जनता की बेहतरी का रास्ता पूँजीवादी चुनाव नहीं लूट-शोषण-अन्याय के विरुद्ध विशाल एकजुट संघर्ष है!

संपादकीय

लोकसभा चुनावों की डुगडुगी बज चुकी है। तमाम तरह के पूँजीवादी वोट मदारी चुनावी खेल में बंदर-बंदरिया का नाच दिखाने पहुँच चुके हैं। कौन खेल ज़्यादा अच्छा खेलेगा, कौन जीतेगा, कौन हारेगा इसका फ़ैसला तो पूँजीपतियों ने ही करना है! आख़िर पूँजीपति वर्ग किसका साथ कितना देता है, किसे इस लुटेरे वर्ग की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक ताक़त का साथ ज़्यादा प्राप्त होता है, ही तो इन चुनावों का फ़ैसला करने वाला है। हालात बता रहे हैं कि भाजपा और इसके सहयोगियों का यानी एन.डी.ए. गठबंधन का पलड़ा भारी है! चुनावी बांड संबंधी हुए खुलासे भी तो यही बता रहे हैं। लेकिन चुनावी बांडों ने सिर्फ़ भाजपा को ही नंगा नहीं किया बल्कि अन्य बहुत-सी पूँजीवादी चुनावी पार्टियों को भी जनता के सामने और ज़्यादा नंगा कर दिया है। इन खुलासों से पूँजीवादी पार्टियों और पूँजीपति वर्ग की रंगरलियाँ एक बार फिर खुलकर सामने आ गई हैं। इन खुलासों ने पूँजीवादी लोकतंत्र को, इसके चुनावी खेल के असल जनविरोधी चरित्र की सरेबाज़ार पोल खोलने का काम किया है।

भारत की अदालती व्यवस्था के भाजपा-आर.एस.एस. से प्रेम संबंध छिपे नहीं हैं। लेकिन चुनावी बांड योजना के ज़रिए भ्रष्टाचार को कितने बड़े, घिनौने रूप में अंजाम दिया गया है, इसका अंदाज़ा इसी

बात से लगाया जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट को भी मोदी हुकूमत की इस योजना के ख़िलाफ़ फ़ैसला देना पड़ा। मोदी सरकार और भारतीय स्टेट बैंक ने हर हथकंडा अपनाकर सुप्रीम कोर्ट में फ़ैसला अपने पक्ष में लाने की कोशिश की, लेकिन भारत के पूँजीवादी नियम-क़ानूनों की इतने बड़े स्तर पर धज्जियाँ उड़ाई गई हैं और भ्रष्टाचार को अंजाम दिया गया है कि सुप्रीम कोर्ट के लिए भी मोदी सरकार की चुनावी बांड योजना के पक्ष में जरा-सी टिप्पणी करना भी संभव नहीं हुआ। नतीजतन कोर्ट ने इसे ग़ैर-संवैधानिक क़रार देते हुए इस योजना पर प्रतिबंध लगा दिया और भारतीय स्टेट बैंक को आदेश दिया कि इस संबंधी अब तक के सारे आँकड़े इंटरनेट पर डाले जाएँ और सार्वजनिक तौर पर मुहैया कराए जाएँ।

चुनाव बांड योजना मोदी सरकार द्वारा जनवरी 2018 में राजनीतिक पार्टियों को मिलने वाले भारी चंदों में "पारदर्शिता" लाने की बातें करते हुए लाई गई थी। लेकिन इसने चुनावी चंदों की दुनिया को और ज़्यादा रहस्यमई बना दिया। राजनीतिक पार्टियाँ, ख़ास तौर पर भाजपा के लिए यह योजना तब से पूँजीपतियों द्वारा दिए "गुप्त" और भारी चंदे को निगलने का ही साधन साबित हुई है। चुनावी बांड योजना के अनुसार कोई भी व्यक्ति, कंपनी या समूह किसी भी राजनीतिक पार्टी की आर्थिक मदद करने के लिए उसे चुनावी बांड ख़रीदकर दे सकता था। बांड ख़रीदने वाले व्यक्ति, कंपनी या समूह और दान लेने वाली राजनीतिक पार्टी का नाम इस योजना के तहत गुप्त रखा गया था। पूँजीपतियों की सुविधा के लिए चुनावी बांड के ज़रिए भाजपा ने कारपोरेट दान की मात्रा पर लगी सीमा को भी ख़त्म कर दिया है। पहले हर राजनीतिक पार्टी को 20,000 रुपए से ज़्यादा चंदा लेने के स्रोत के बारे में जानकारी देनी पड़ती थी। इस योजना में ऐसी कोई सीमा नहीं थी। चंदे की रक़म पर हर प्रकार के टैक्स से छूट भी दी गई यानी टैक्स चोरी का एक और क़ानूनी रास्ता बनाया गया। पहले ये दान या चंदे पिछले तीन सालों में एक कंपनी के औसत मुनाफ़े के 7.5 प्रतिशत तक सीमित था, जिसमें इस योजना के तहत खुली छूट दे दी गई।

जारी हुए आँकड़ों के अनुसार, चुनाव बांड के ज़रिए सबसे ज़्यादा चंदा प्राप्त करने वाली 5 पार्टियों में भाजपा सबसे ऊपर है। भाजपा को लगभग 6,060 करोड़, त्रिणमूल कांग्रेस को 1609 करोड़, कांग्रेस को 1422 करोड़, भारत राष्ट्र समिति को 1215 करोड़ और बीजू जनता दल को 775 करोड़ रुपए हासिल हुए हैं। चुनाव आयोग के अनुसार 12 अप्रैल 2019 से जनवरी 2024 तक सभी पार्टियों को कुल 12,769 करोड़ रुपए चुनाव बांड के ज़रिए हासिल हुए हैं। इस तरह लगभग

(पन्ना 15 पर जारी)

इस अंक में

- चुनावी बांड खुलासों से पूँजीवादी चुनावी खेल एक बार फिर हुआ बेपर्द! फिर से सामने आया पूँजीवादी लोकतंत्र का गंदा, घिनौना, भ्रष्ट चेहरा! – संपादकीय 1
- जहाँ स्त्री-पुरुष, धर्म, जाति का भेदभाव नहीं होता... 2
- खाद्य पदार्थों की बढ़ती क़ीमतें और मेहनतकश जनता की बढ़ती बदहाली 3
- पूँजीवादी लूट, शोषण, अन्याय के ख़िलाफ़ विशाल मज़दूर आंदोलन खड़ा करने के लिए आगे आओ! – मज़दूर दिवस सम्मेलन 4
- सकल घरेलू उत्पादन के नए आँकड़े और ज़मीनी हक़ीक़तें 4
- गैस फ़ैक्टरी के निर्माण को रोकने के लिए जनता संघर्ष की राह पर 5
- आबादी: एक समस्या? (तीसरी किश्त) 6
- लुधियाणा में बड़ी गिनती में खुल रहे शराब के ठेके 7
- पेरिस कम्यून: मज़दूरों का पहला राज्य 8
- भारत में बेरोज़गारी की भयानक हालत: कुल बेरोज़गारों में 83 फ़ीसदी नौजवान 10
- 23 मार्च के शहीदों की याद में अलग-अलग जगहों पर कार्यक्रम 11
- निजी अस्पतालों में ग़ैर-ज़रूरी सिजेरियन डिलीवरी का काला बाज़ार 12
- झूठी ख़बरें फैलाने के मामले में विश्व स्तर पर भारत पहले नंबर पर 13
- ऑटो उद्योग के मज़दूरों के हालात 13
- बेंगलुरु का पानी संकट – मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था का नतीजा 14
- जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम की वर्षगाँठ 13 अप्रैल के अवसर पर जलियाँवाला बाग़ की ख़ून से भीगी मिट्टी की महक दिलों में बसाकर समाजवादी समाज के निर्माण की लड़ाई तेज़ करो! 16

मुक्ति संग्राम

दफ़्तर फ़ोन नं.– 83607-66937 **ईमेल –** muktisangram.hindi@gmail.com

सहयोग राशि – एक प्रति – 10 रुपए

सालाना – 120 रुपए (डाक के ज़रिए – 150 रुपए)

मुक्ति संग्राम के लिए सहयोग राशि नीचे दिए गए बैंक खाते/UPI के ज़रिए भेजें। राशि भेजकर उपरोक्त फ़ोन नंबर पर सूचित ज़रूर कर दें।

MUKTI SANGRAM
STATE BANK OF INDIA
A/c no. – 42834340606
BRANCH – SAMRALA ROAD, LUDHIANA
IFSC CODE – SBIN0011583

UPI ID - MUKTISANGRAAM@SBI

मुक्ति संग्राम यहाँ से प्राप्त करें

- **शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, #498, एल.आई.जी. फ़्लैट्स, जमालपुर कालोनी, लुधियाणा – 83607-66937**
- **मज़दूर पुस्तकालय, #4135, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, ताजपुर रोड, लुधियाणा – 85910-90800**
- **जनचेतना, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाणा – 70429-76396**
- **मानव, चंडीगढ़ – 98888-08188**
- **पावेल, सिरसा – 86078-89902**
- **मनन, शिमला – 98162-37848**

पाठक मंच

जहाँ स्त्री-पुरुष, धर्म, जाति का भेदभाव नहीं होता...

मेरा नाम अंकिता है। मैं ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ती हूँ। मैं मौलीजागराँ (चंडीगढ़) की रहने वाली हूँ। मुझे नौजवान भारत सभा में शामिल हुए दो साल हो गए हैं। सभा में रहकर जो कुछ मैंने सीखा है, जो जाना है, उस बारे में मैं अपना अनुभव साझा कर रही हूँ।

नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने मौलीजागर में प्रचार किया था। मैंने उन्हें प्रचार करते देखा, तो मैंने सोचा कि वे सरकार की तरह शोर-गुल करके चले जाएँगे। लेकिन फिर मुझे पता चला कि सभा के कुछ कार्यकर्ता भी अपना समय निकालकर हमारे क्षेत्र में 'नई सवेर पाठशाला' की ओर से ट्यूशन पढ़ाते हैं, तो मेरी दिलचस्पी बढ़ गई।

धीरे-धीरे पता चला कि नौजवान भारत सभा शहीद भगतसिंह के विचारों को समर्पित नौजवानों का एक क्रांतिकारी संगठन है और यह भगतसिंह के सपनों के समाज के निर्माण के लिए काम करता है। धीरे-धीरे मैंने सभा की बैठकों में जाना शुरू किया। मेरे लिए यह सब नया था। शुरू में तो मैं कुछ भी नहीं बोलती थी, मुझे अंदर ही अंदर डर-सा लगता रहता था। लेकिन जल्द ही मैं सभा के बाक़ी साथियों से घुल-मिल गई। मुझे पहली बार पता चला था कि एक ऐसी संस्था है, जहाँ लड़के-लड़कियों में कोई भेदभाव नहीं होता, जहाँ जाति/धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता।

अपने घर में भी जो बात मुझे खलती थी, वह यह थी कि घर पर मेरी राय कोई मायने नहीं रखती। हमारे यहाँ भी ज़्यादातर घरों जैसा ही माहौल है कि अक्सर घर के पुरुष, चाहे वे बड़े भाई हों या पिता, हमें यह कहकर चुप करा देते हैं कि तुम अभी ये बातें नहीं जानती, तुम्हें चुप रहना चाहिए। लेकिन दूसरी ओर सभा की बैठकों में हर छोटे-छोटे मामले में हमारी राय ली जाती है।

23 मार्च के शहीदों और 28 सितंबर को शहीद भगतसिंह की जयंती के अवसर पर नौजवान भारत सभा द्वारा चलाए गए अभियान में मैं भी शामिल थी। इन अभियानों में मैंने देखा है कि अभियान कैसे चलाना है, कितना पर्चा छापना है, किस क्षेत्र में बाँटना है आदि हर मुद्दे पर हमारी राय ली जाती है। बल्कि अगर अभियान के दौरान कोई ग़लती हो जाती है, तो इसकी भी समीक्षा की जाती है। ये सब मेरे लिए बिल्कुल नया अनुभव था। सभा में रहकर मैंने जो सीखा और जो सीख रही हूँ, ऐसा अवसर कहीं और मिलना शायद मेरे लिए कठिन था। मैं हमेशा सभा की नियमित चर्चाओं में भाग लेती हूँ, जहाँ कई नई चीज़ें सीखने को मिलती हैं। ऐसी चीज़ें जो हमें स्कूल की किताबों में नहीं बताई जाती हैं। सिर्फ़ स्कूली किताबें पढ़कर कोई व्यक्ति आई.ए.एस. अधिकारी तो बन सकता है लेकिन एक अच्छा इंसान नहीं बन सकता।

– अंकिता, चंडीगढ़

मज़दूर साथियो,

मुक्ति संग्राम आपका अपना अख़बार है। आप अपने कारख़ाने, अपनी बस्ती में मज़दूरों-मेहनतकशों के हालातों के बारे लिखकर भेजिए। समाज में मज़दूरों-मेहनतकशों के साथ होने वाली बेइंसाफ़ी, लूट-शोषण-उत्पीड़न के और संघर्षों के अपने तजुर्बों के बारे में लिखकर भेजिए। आपको मुक्ति संग्राम में छपी सामग्री कैसी लगती है, आपको इसमें क्या कमियाँ-कमज़ोरियाँ नज़र आती हैं – बेझिझक लिखकर भेजिए। आपके सुझाव मुक्ति संग्राम को बेहतर बनाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

– संपादक, मुक्ति संग्राम

ऑनलाइन 'मुक्ति संग्राम' पढ़ने के लिए नीचे दिए गए साइट और फ़ेसबुक पन्ने के लिंक पर जाएँ :

साइट – muktisangram.wordpress.com

फ़ेसबुक पन्ना – facebook.com/muktisangrammag

मुक्ति संग्राम के लेख-टिप्पणियाँ और अन्य साम्रगी अपने वट्सअप पर मगँवाने के लिए अपना वट्सअप नंबर और पता इस नंबर पर भेजें :

83607-66937

खाद्य पदार्थों की बढ़ती क़ीमतें और मेहनतकश जनता की बढ़ती बदहाली

पिछले कुछ समय से भोजन की वस्तुओं की क़ीमतों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। साल 2020 के बाद अकेले भारत में ही नहीं, विश्व स्तर पर महँगाई के बढ़ने के साथ खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में तेज़ी आई है, जिससे मेहनतकश आबादी का जीवन स्तर तेज़ी से नीचे गिरा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ ज़रूरी खाद्य पदार्थों की क़ीमतें पिछले 20 सालों के चरम पर हैं। चाहे अनाज हो, खाने वाला तेल, दूध या दूध से बनने वाले अन्य पदार्थ सब भारत की ग़रीब आबादी की पहुँच से दूर हो रहे हैं। 2023 की विश्व भूखमरी सूचकांक की रिपोर्ट के अनुसार भारत 125 देशों में से 111वें स्थान पर है। सारे संसार की कुल आबादी का 9.2 प्रतिशत कुपोषण का शिकार है, पर भारत की लगभग 16.60 प्रतिशत आबादी कुपोषित है, जो संख्या में लगभग 23 करोड़ 36 लाख 61 हज़ार बनती है।

अगर इस समय महँगाई दर की बात करें, तो आँकड़ों के अनुसार जनवरी 2024 में यह 5.10% थी, जबकि दिसंबर 2023 में 5.69% थी। समाचारों में यह दिखाया जा रहा है कि भारत की महँगाई पर सरकार ने क़ाबू पाया है। पर गोदी मीडिया द्वारा यह नहीं दिखाया जा रहा कि फ़रवरी महीने में अनाज की महँगाई बढ़कर 6.95%, सब्ज़ियों की महँगाई बढ़कर 19.78% और दालों की महँगाई 18.48% हो चुकी है! यानी जो बुनियादी चीज़ों की मेहनतकशों को सबसे अधिक ज़रूरत हैं, उनकी महँगाई पिछले साल के मुक़ाबले कई गुना बढ़ी है। दूसरा मसला महँगाई दर मापने के पैमाने का भी है, जिस वजह से असली महँगाई आँखों से ओझल हो जाती है।

इस नुक्ते को थोड़ा खोलकर समझते हैं कि कैसे महँगाई से संबंधित सरकारी आँकड़े सही तस्वीर पेश नहीं करते। यह महँगाई के मेहनतकश लोगों पर बोझ को कैसे कम करके दर्शाते हैं।

महँगाई का माप दरअसल पिछले साल के मुक़ाबले अलग-अलग वस्तुओं और सेवाओं की क़ीमत की बढ़ोतरी का औसत माप होता है, पर खपत वाली अलग-अलग वस्तुओं की महँगाई वास्तव में काफ़ी अलग होती है। इसलिए इन सभी पर अलग-अलग भार मिथ कर औसत माप निकाला जाता है। पर चूँकि लोग अलग-अलग वर्गों में बँटे समाजों में हैं, इसलिए एक ग़रीब परिवार द्वारा खपत की जाने वाली वस्तुएँ अमीर परिवार से अलग होंगी और उसके मुताबिक़ दोनों पर बोझ भी अलग-अलग होगा। महँगाई दर मापने के लिए बुनियादी सूचकांक है 'उपभोक्ता क़ीमत सूचकांक'। उदाहरण के लिए उपभोक्ता सूचकांक में स्वास्थ के लिए रखे वज़न की बात करते हैं। स्वास्थ सुविधाओं के ख़र्च का वज़न इसमें सिर्फ़ 5.89% है। अब अगर आम परिवार का कोई सदस्य साल में बीमार ना हुआ हो, तो यह ख़र्च बेहद कम या शून्य भी हो सकता है, लेकिन अगर कोई बीमारी आ जाए, तो ख़र्च नियंत्रण से बाहर भी हो सकते हैं और उसकी बचत का बड़ा हिस्सा चूस सकते हैं। पर चूँकि सूचकांक में इसका वज़न 6% से भी कम है, इसलिए इस ख़र्च का बोझ महँगाई की सरकारी दर में उतना झलकता ही नहीं। इसी तरह शिक्षा का वज़न सूचकांक में सिर्फ़ 4.46% है, पर अगर हम उन परिवारों को पूछकर देखें, जिन्होंने अपने बच्चों की कॉलेज, यूनिवर्सिटी फ़ीस देनी है तो उनके लिए यह बहुत बड़ा बोझ है।

अगर भोजन की बात करें, तो यहाँ भी मामला अलग-अलग है। भोजन में फलों, सब्ज़ियों का वज़न क्रमवार 2.89% और 6.04% है। पर रोज़ाना सब्ज़ियों पर निर्भर मेहनतकश आबादी जानती है कि इन चीज़ों की महँगाई वाक़ई ज़्यादा है। फलों-सब्ज़ियों की यह महँगाई सरकारी आँकड़ों में कम नज़र आने का एक और कारण यह भी है कि ये आँकड़े पिछले साल की महँगाई को बुनियाद बनाकर निकाले जाते हैं। यानी अगर पिछले साल किसी वस्तु की क़ीमत तेज़ी से बढ़ी हो तो इस साल के मुक़ाबले उसकी बढ़ोतरी कम नज़र आएगी, भले ही आम परिवार के लिए वह बड़ा बोझ बनी हो।

पर अनाज, सब्ज़ियाँ आदि की बढ़ रही महँगाई या भारत में बड़ी संख्या में लोगों का भुखमरी का शिकार होने का मतलब क्या यह है कि भारत में अनाज की कमी है? बिल्कुल नहीं! उत्पादन को आधार बनाकर बात करें, तो साल 2000 से 2019 तक मुख्य फ़सलों का कुल उत्पादन 53% बढ़ा और साल 2022-23 में अनाज का उत्पादन 32.9 करोड़ टन के ऊँचे स्तर पर पहुँच गया था। विश्व स्तर पर मुख्य फ़सलों के उत्पादन का आधा हिस्सा सिर्फ़ चार फ़सलें – गन्ना, मक्का, गेहूँ और चावल से बनता है। इस तरह दालों का उत्पादन 2022-23 में 2.6 करोड़ टन, फलों का उत्पादन भी 10.8 करोड़ टन और सब्ज़ियों का उत्पादन 21.2 करोड़ टन के रिकार्ड स्तर पर था। यानी मानवता के पास इतना भोजन पूरे इतिहास में कभी भी मौजूद नहीं था, जितना अब है। फिर क्या कारण है कि इतना उत्पादन होने के बावजूद विश्व में भुखमरी लगातार बढ़ती जा रही है? फिर भी लोग भूखे मर रहे हैं? बड़ी संख्या में औरतें ख़ून की कमी से जूझ रही हैं? क्यों मेहनतकश आबादी जो ख़ून-पसीना एक करके काम करती है, अपनी ज़रूरतों पर कटौती करने को मजबूर है?

इस सबका एक ही कारण है मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था, जिसमें उत्पादन का एक ही मक़सद है – मुनाफ़ा! इस व्यवस्था का मक़सद कभी भी मानवीय ज़रूरतों को पूरा करना नहीं रहा। चाहे अनाज के भरे गोदामों के सामने ग़रीब लोग भूख से मर जाएँ, फिर भी उनके लिए गोदामों के दरवाज़े बंद रहेंगे। बल्कि पूँजीपति और ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के इरादे से अनाज की जमाखोरी भी करते हैं। ऊपर से लुटेरी सरकारों की बेशर्मी यह है कि भोजन की वस्तुओं पर भी टैक्स लगाया जाता है, दूध के पैकेट हों या सरसों के तेल की बोतल या ऐसी खाने-पीने वाली वस्तुएँ, उन पर मनमर्जी का टैक्स लगाया जाता है। दूसरा, आज़ादी के 77 सालों के बाद भी सब्ज़ियों, फल, अनाज आदि को रखने के लिए कोई सही प्रबंध नहीं है, जिसके कारण हर साल लाखों करोड़ों का अनाज और अन्य वस्तुएँ ग़रीबों के मुँह तक जाने के बजाय सड़ जाती हैं। सरकार को करना तो यह चाहिए कि वह अमीरों की सब्सिडियाँ बंद करके, उन पर ज़्यादा टैक्स लगाकर आम लोगों को सस्ता मिलता राशन मुहैया करवाए, पर भारत में बिल्कुल इसके उलट होता है। ग़रीबों के तो राशन कार्ड भी काटे जा रहे हैं, उन्हें मिलने वाले सस्ते राशन और अन्य सुविधाओं पर कटौती की जा रही है, वहीं दूसरी ओर अमीरों को सब्सिडियाँ और अन्य रियायतें दी जा रही हैं और क़र्ज़ माफ़ किए जा रहे हैं।

बढ़ती महँगाई दरअसल मेहनतकश लोगों के जीने के हक़ पर ही सीधा हमला है। 'बहुत हुई महँगाई की मार से, अबकी बार मोदी सरकार' का नारा देकर सत्ता सँभालने वाली सरकार अगर चाहे तो इन क़दमों द्वारा महँगाई की मार से मेहनतकश लोगों को कुछ राहत दे सकती है – पहले पेट्रोल, डीजल और अन्य वस्तुओं पर टैक्स कम करके इनकी महँगाई कम करना; दूसरा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का घेरा बढ़ाने और शहरी क्षेत्र के लिए भी रोज़गार की ऐसी स्कीम चलाना और जब तक लोगों को रोज़गार नहीं मिलता, उन्हें वाजिब बेरोज़गारी भत्ता देना; चौथा इन सारे क़दमों के लिए साधन जुटाने के लिए पूँजीपतियों पर टैक्स लगाना। पर लुटेरी मोदी हुकूमत लोगों की इन बिल्कुल वाजिब और जायज़ माँगों पर कोई ध्यान नहीं दे रही। इन बुनियादी माँगों के लिए भी मेहनतकश लोगों को आगे आकर सरकार पर दबाव डालना पड़ेगा, तब जाकर सरकार से अपने कुछ हक़ लिए जा सकते हैं। पर साथ में इन लक्षणों के ख़ात्मे के लिए इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था को ख़त्म करके समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करने की ज़रूरत है, जिसके लिए एक बड़ी क्रांतिकारी लहर खड़ी करनी पड़ेगी।

– रविंदर

जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम की वर्षगाँठ

(पन्ना 16 से आगे)

है। उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद आज भी पूँजीपति साम्राज्यवादी गिद्धों के साथ मिलकर भारत के लोगों को लूट रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप भारत की विशाल जनता में नफ़रत और ग़ुस्सा पैदा होना स्वाभाविक है। इसके चलते पैदा होने वाले विद्रोही संघर्षों को कुचलने और क़ाबू पाने के लिए, और अपने लूट के निजाम की मज़बूती और निरंतरता बनाए रखने के लिए लुटेरे शासक वर्गों को हमेशा बेहद ग़ैर-लोकतांत्रिक, जालिम और दमनकारी क़ानूनी व्यवस्था की ज़रूरत रहती है। इसलिए भारत में रोलट एक्ट की तर्ज पर आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) क़ानून (टाडा), आतंकवाद रोकथाम क़ानून (पोटा) आदि क़ानून बनते रहे हैं। अंग्रेज़ों के काले क़ानूनों की तरह आज भी ग़ैर-क़ानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम (यू.ए.पी.ए.), राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून (एन.एस.ए.), सशस्त्र बल (विशेष शक्तियाँ) क़ानून (अफ़सपा)और अन्य दर्जनों काले क़ानून हक़ माँगने वाले लोगों पर उत्पीड़न के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हैं।

इसलिए जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम कांड का इतिहास आज भी प्रासंगिक है। इस संघर्ष में शामिल लोगों के लड़ने का जज़्बा और क़ुर्बानियाँ हमें पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न की ज़ंजीरों को तोड़ने के लिए प्रेरित करती हैं, हमारी राह रौशन करती हैं। आओ, जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम के शहीदों के ख़ून से सनी मिट्टी की महक को दिलों में बसाकर 'इंक़लाब ज़िंदाबाद', 'पूँजीवाद-साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' का नारा बुलंद करते हुए इस आधुनिक ग़ुलामी की ज़ंजीरों को काट फेंके, जन-केंद्रित समाज, समाजवाद के निर्माण में जुट जाएँ।

– छिंदरपाल

दुनिया के मज़दूरो एक हो! शिकागो के शहीद अमर रहें! पूँजीवाद-साम्राज्यवाद मुर्दाबाद!

प्यारे मज़दूर भाइयो और बहनो,

1 मई को अंतरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस (मई दिवस) आ रहा है। सारी दुनिया के मज़दूरों का साझा दिन, सबसे बड़ा त्यौहार! हमारे मज़दूर शहीदों को याद करने का दिन, इंसान के तौर पर बेहतर जीवन हासिल करने के लिए पूँजीवादी लूट-शोषण-अन्याय के विरुद्ध एकजुट संघर्षों के लिए नए संकल्प लेने का दिन! पूँजीपतियों के लिए मज़दूरों की एकता और गगनभेदी नारों से खौफ़ज़दा हो जाने का दिन और मज़दूरों, मेहनतकशों के लिए नया जोश, नई उम्मीदों का दिन!

मई दिन का जन्म काम के घंटे सीमित करने, आठ घंटे काम दिहाड़ी का क़ानून बनवाने के लिए मज़दूरों के महान जुझारू संघर्ष से हुआ और मज़दूरों की पूँजीवादी शोषण से मुक्ति के लिए महान संघर्ष का प्रतीक बन गया। इस दिन को हर देश, राष्ट्र, धर्म, जाति, नस्ल और भाषा के मज़दूर बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। इस दिन दुनिया के अलग-अलग देशों के मज़दूर पहली मई के मज़दूर शहीदों को रैलियाँ, प्रदर्शन, सम्मेलन आदि आयोजित करके श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, जिन्होंने मज़दूर वर्ग के अधिकारों और पूँजीपतियों की लूट-शोषण के ख़िलाफ़ अपनी जानें क़ुर्बान कीं। हम भी हर साल की तरह लुधियाणा में इस बार भी मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन करेंगे। आप सभी परिवारों समेत ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में पहुँचें। अन्य मज़दूरों को भी ज़रूर लेकर आएँ।

अंतरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस (1 मई) के अवसर पर

पूँजीवादी लूट, शोषण, अन्याय के ख़िलाफ़ विशाल मज़दूर आंदोलन खड़ा करने के लिए आगे आओ!

पहली मई को काम पर ना जाकर ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में परिवारों समेत मज़दूर दिवस सम्मेलन में शामिल हों!

मज़दूर दिवस सम्मेलन

1 मई 2024 (बुधवार)

समय - सुबह 10 बजे

स्थान – मज़दूर पुस्तकालय/यूनियन दफ़्तर के सामने

(मकान नं. 4135, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी,
नज़दीक दयाल पब्लिक स्कूल, ताजपुर रोड, लुधियाणा)

आयोजक संगठन –

कारख़ाना मज़दूर यूनियन और टैक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन

सहयोग – नौजवान भारत सभा

संपर्क फ़ोन नं. – 9888655663, 9646150249

सकल घरेलू उत्पादन के नए आँकड़े और ज़मीनी हक़ीक़तें

फ़रवरी महीने के अंत में भारत सरकार के राष्ट्रीय आँकड़ा दफ़्तर द्वारा भारत के 'सकल घरेलू उत्पादन' संबंधी नए आँकड़े जारी किए गए। इन आँकड़ों के मुताबिक़ अक्टूबर-दिसंबर तिमाही के दौरान सकल घरेलू उत्पादन 8.4% की दर से आगे बढ़ा है और पूरे 2023-24 वित्तीय वर्ष में इसके 7.6 प्रतिशत रहने का अनुमान है। भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर का कहना है कि ये आँकड़े 8 प्रतिशत तक भी पहुँच सकते हैं। 2024 के लोकसभा चुनाव में इन आँकड़ों को मोदी सरकार अपनी उपलब्धि के तौर पर प्रचारित कर रही है। लेकिन इन आँकड़ों के ऐसे अहम पक्ष भी हैं, जिन्हें गोदी मीडिया द्वारा नहीं दिखाया जा रहा। आज हम इन्हीं पहलुओं के बारे में बात करेंगे।

पहली बात यह है कि सकल घरेलू उत्पादन के आँकड़ों के साथ निजी खपत के आँकड़ों को नहीं प्रचारित किया जा रहा, जो इनसे अलग आए हैं। आर्थिक विशेषज्ञों का कहना है कि आम हालात में सकल घरेलू उत्पादन के आँकड़े और वस्तुओं और सेवाओं की खपत लगभग बराबर रहती हैं। या वो 0.5 से लेकर 1 फ़ीसदी तक कम होती है। लेकिन दिसंबर तिमाही के आँकड़ों की दरों में बहुत बड़ा अंतर है। आम परिवारों की खपत वहीं खड़ी है। ग्रामीण क्षेत्र में भी वस्तुओं की खपत में कोई इज़ाफ़ा दर्ज नहीं किया गया। अधिकृत आँकड़े कहते हैं कि खपत दर सिर्फ़ 3 प्रतिशत ही है। 'राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय' ने भी वस्तुओं और सेवाओं की खपत दर को 3 प्रतिशत ही बताया है। इसका मतलब यह है कि सकल घरेलू उत्पादन के बढ़ने से आम लोगों की खपत पर कोई ज़्यादा असर नहीं पड़ा यानी सकल घरेलू उत्पादन की तथाकथित ख़ुशहाली आम लोगों द्वारा ख़रीदी जा रही वस्तुओं की ज़्यादा बिक्री के रूप में कहीं नज़र नहीं आ रही। हाँ, ऊपर के कुछ प्रतिशत लोग हैं, जो ऐशो-आराम की महँगी वस्तुओं पर दिल खोलकर ख़र्च कर रहे हैं।

दूसरा, कई आर्थिक विशेषज्ञ सकल घरेलू उत्पादन के बिना सकल मूल्य संवर्धन को अर्थव्यवस्था को मापने का अहम पैमाना मानते हैं। 'सकल मूल्य संवर्धन' देश में पैदा हुई कुल वस्तुओं और सेवाओं को गिना जाता है, पर इसमें टैक्स और सब्सिडियों को छोड़ दिया जाता है। इस बार दोनों के बीच अंतर पिछले दस सालों में सबसे ज़्यादा है। इस तिमाही में अप्रत्यक्ष कर में (यानी आम लोगों पर बढ़ते टैक्स का बोझ) 32 प्रतिशत इज़ाफ़ा होने के कारण सकल घरेलू उत्पादन और सकल मूल्य संवर्धन में बड़ा अंतर आया है। इसका मतलब है कि भारत की अर्थव्यवस्था की रफ़्तार सुस्त पड़ रही है, लेकिन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष करों द्वारा सरकार की कमाई बढ़ गई है। पिछले समय में बड़े पूँजीपतियों द्वारा लागत कम होने के बावजूद उत्पादों की क़ीमतें नहीं घटाई गईं, जिससे उन्हें ज़्यादा मुनाफ़े हुए और इसका एक हिस्सा उन्होंने टैक्स के रूप में सरकार को अदा किया, जो सकल घरेलू उत्पादन के इज़ाफ़े में भी नज़र आया। "प्रत्यक्ष टैक्स के केंद्रीय बोर्ड" के मुताबिक़ सरकार को प्राप्त होने वाले 'प्रत्यक्ष करों' में 20.25 प्रतिशत इज़ाफ़ा हुआ है, जिसमें कारपोरेट आमदनी टैक्स और निजी आमदनी टैक्स का काफ़ी हिस्सा है। इस तरह बढ़ी हुई टैक्स कमाई भी इन आँकड़ों में इज़ाफ़े के तौर में नज़र आई है।

तीसरा, अगर हम बाक़ी भारतीय अर्थव्यवस्था की बात करें, तो यहाँ भी ज़्यादा उत्साहित होने वाली बात नहीं। खेती-बाड़ी क्षेत्र की इज़ाफ़ा दर इस तिमाही में सिर्फ़ 0.8% रही है, जो पिछले 4 सालों के हिसाब से सबसे निचले स्तर पर है। इसी तरह भारत के आठ बुनियादी उद्योगों की रफ़्तार भी धीमी है और इनमें इज़ाफ़ा दर सिर्फ़ 3.6 प्रतिशत है यानी सकल घरेलू उत्पादन का आधा ही।

चौथा, भारत में सकल घरेलू उत्पादन के इज़ाफ़े के पीछे अहम कारण सरकार के ख़र्चों में हुआ इज़ाफ़ा भी है, जिसकी चर्चा बहुत कम हुई है। भारत सरकार ने सड़कों, पुलों और बंदरगाहों पर यानी बुनियादी ढाँचा निर्माण पर बड़े स्तर पर ख़र्च किया है। भारत सरकार का पूँजी ख़र्च 2019-20 में 12.5 प्रतिशत से लेकर 2023-24 में 23.3 प्रतिशत हो गया है। पूँजी ख़र्च 2014-15 के मुक़ाबले 2023-24 में 4.5 गुना बढ़ा है। जबकि इसके उलट निजी क्षेत्र में नए निवेश के लिए उत्साह धीमा पड़ रहा है। यानी मोदी सरकार सरकारी ख़र्च द्वारा अर्थव्यवस्था को उत्साह देने की जी-तोड़ कोशिश कर रही है, लेकिन इसका दूसरा असर देश पर लगातार क़र्ज़ के बढ़ने में दिख

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

रहा है। 2014 में भारत पर क़र्ज़ सकल घरेलू उत्पादन का 67 प्रतिशत था, जो दस सालों में बढ़कर लगभग 90 प्रतिशत हो चुका है और आने वाले समय में इसके 100 प्रतिशत होने की उम्मीद है। आर्थिक विशेषज्ञों के मुताबिक़ किसी भी देश का क़र्ज़ उसके घरेलू उत्पादन के 60 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं होना चाहिए, यानी भारत पर क़र्ज़ ख़तरे के घेरे में आ चुका है। लेकिन भारत सरकार अब इसका बोझ भी आम लोगों पर डालने की तैयारी कर रही है। क़र्ज़ घटाने के नाम पर सरकार सरकारी ख़र्च में आम लोगों को मिलने वाली सब्सिडियों या अन्य सरकारी सुविधाओं में और बड़े कट लगाएगी। लेकिन दूसरी ओर कोरोना लॉकडाउन के बाद बढ़े पूँजीपतियों के मुनाफ़ों पर ना कोई टैक्स बढ़ाया जाएगा और ना ही कोई नया टैक्स लगाया जाएगा। इससे आम लोगों की मुश्किलें और बढ़ेंगी। अब भी सकल घरेलू उत्पादन बढ़ने का संगठित और ख़ासकर ग़ैर-संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को ख़ास फ़ायदा नहीं हुआ और महँगाई के सामने इनके वेतन तो वहीं ठहरे हुए हैं।

पाँचवाँ, इस समय विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के कई बड़े देश आर्थिक सुस्ती का सामना कर रहे हैं। जापान और यू.के. जैसे देश आर्थिक मंदी का सामना कर रहे हैं। इन देशों की अर्थव्यवस्था में पिछले छह महीनों के दौरान नकारात्मक विकास दर दर्ज की गई है। इसके अलावा जर्मनी, नीदरलैंड जैसी अर्थव्यवस्थाओं की रफ़्तार भी काफ़ी सुस्त पड़ गई है। ये वे देश हैं, जहाँ भारत से बड़ी स्तर पर वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात होता है। अगर इन देशों के यही हालात बने रहे, तो भारत से निर्यात और इनसे होने वाली कमाई कम होनी तय है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि सकल घरेलू उत्पादन के आँकड़ों का एक पक्ष दिखाकर फुदक रही मोदी सरकार इसके दूसरे पहलू नहीं दिखा रही। आँकड़ों का दूसरा पहलू और अन्य आँकड़े भारत के सामने खड़ी चुनौतियों की ओर इशारा कर रहे हैं। भारत सरकार पर बढ़ता क़र्ज़ भारतीय शासकों के लिए गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। जिस क़र्ज़ द्वारा भारत के शासकों ने पिछले सालों में अर्थव्यवस्था को धक्का लगाया है, अब वह क़र्ज़ बड़ा बुलबुला बनता जा रहा है, जो किसी भी समय फट सकता है। और क़र्ज़ के इस विशाल बुलबुले के फटने का नतीजा भारतीय अर्थव्यवस्था को गंभीर संकट में लेकर जा सकता है। जिसका सीधा असर भारत के मेहनतकश लोगों पर सबसे पहले पड़ेगा। इस स्थिति से पैदा होने वाली बेचैनी को लुटेरे शासक अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए लगातार एक के बाद एक जनविरोधी क़ानून पारित किए जा रहे हैं और लोगों को दबाने और सत्ता के दाँत तीखे करते जा रहे हैं। इसलिए आज आँकड़ों की सरकारी बयानबाजी से निकलकर भारतीय अर्थव्यवस्था की असली हालत समझने की ज़रूरत है और नई पैदा होने वाली चुनौतियों के मद्देनज़र कमर कसने की ज़रूरत है।

– गुरमन

गैस फ़ैक्टरी के निर्माण को रोकने के लिए जनता संघर्ष की राह पर

गाँव भूंदड़ी और इलाक़े के अन्य गाँवों और क़स्बों की जनता के साथ बड़ा अन्याय करते हुए पंजाब सरकार ने जी.आई.ए.आई. एनर्जी प्रा.लि. नाम की कंपनी को लुधियाणा ज़िले के गाँव भूंदड़ी में सी.बी.जी./बायो सी.एन.जी. गैस फ़ैक्टरी लगाने की मंजूरी दी है। फ़ैक्टरी निर्माण का काम काफ़ी तेज़ी से हो रहा है, काफ़ी हिस्से का निर्माण हो चुका है। प्रदूषित गैस फ़ैक्टरी विरोधी संघर्ष कमेटी, भूंदड़ी के नेतृत्व में गाँव के लोग फ़ैक्टरी लगने का विरोध कर रहे हैं।

संघर्ष का नेतृत्व कर रहे संगठनों का कहना है कि इससे जनता के लिए तरह-तरह के भयानक खतरे खड़े हो जाएँगे, उन्हें भयानक नुक़सान झेलने पड़ेंगे। संघर्ष का नेतृत्व कर रहे संगठनों का कहना है कि फ़ैक्टरी मालिकों, ज़िला प्रशासन, अलग-अलग सरकारी संस्थानों, बड़े-छोटे सारे अफ़सरों से लेकर एम.एल.ए.-एम.पी. तक सबको गाँववासियों द्वारा किए जा रहे तर्कसंगत विरोध से परिचित करवा दिया गया है और फ़ैक्टरी के सामने विशाल धरना भी दिया गया था, जिसके दौरान एस.डी.एम. और एम.एल.ए. साहब द्वारा मौक़े पर आकर माँग पत्र भी लिया गया, लेकिन जनता के नुक़सान, खतरों, बुरी संभावनाओं और विरोध को दरकिनार करते हुए फ़ैक्टरी का निर्माण नहीं रोका गया है। मजबूर होकर जनता द्वारा 28 मार्च 2024 से फ़ैक्टरी के सामने पक्का धरना दिया जा रहा है।

संघर्ष कमेटी का कहना है कि वे फ़ैक्ट्रियाँ लगने और रोज़गार पैदा होने का विरोध नहीं करते, लेकिन रोज़गार पैदा करने के नाम पर जनता की ज़िंदगियों से खेलने जा रही, जनता का लाभ की बजाय कहीं अधिक नुक़सान करने जा रही इस फ़ैक्टरी का विरोध करते हैं।

इस फ़ैक्टरी से केवल भूंदड़ी गाँव की जनता के लिए ही बड़े ख़तरे खड़े नहीं हो रहे, बल्कि इलाक़े के अन्य गाँवों और क़स्बों की जनता को भी भारी नुक़सान झेलने पड़ेंगे। इसलिए उन्होंने गाँव भूंदड़ी समेत सारे इलाक़े की जनता को इस संघर्ष में हर तरह से विशाल भागीदारी करने का आह्वान किया है।

गाँव भूंदड़ी में लग रहे सी.बी.जी./बायो सी.एन.जी. गैस फ़ैक्टरी का विरोध क्यों?

संघर्ष कमेटी द्वारा जारी किए गए एक पत्र में विरोध संबंधी नीचे दिए गए 5 नुक्ते बताए गए हैं –

(1) फ़ैक्टरी में टनों के हिसाब से गैस का भंडार हमेशा मौजूद रहेगा। इतने बड़े स्तर पर इकट्ठी की गई गैस अगर कभी लीक होती है, तो दम घुटने से और आग लगने के कारण इंसानी ज़िंदगियों के साथ-साथ अन्य जीव-जंतुओं का बड़े स्तर पर जानी नुक़सान हो सकता है और गंभीर बीमारियों का क़हर टूट सकता है। फ़ैक्टरी में विस्फोट होने की सूरत में भी बिल्कुल नज़दीक रह रही आबादी के जान-माल का भारी नुक़सान होगा। गंभीर चिंताजनक बात यह है कि यह फ़ैक्टरी गाँव की आबादी से 100 मीटर भी दूर नहीं है और स्कूल के बिल्कुल सामने बन रही है। फ़ैक्टरी में गैस लीक और विस्फोट जैसी अनहोनी होने की सूरत में होने वाले नुक़सान के भयंकर नतीजे होंगे।

(2) फ़ैक्टरी लगने से हवा, पानी, ज़मीनों में जो प्रदूषण फैलेगा उससे जनता को सांस, दिल, आँखों की और अन्य शारीरिक बीमारियाँ लगेंगी। पहले ही बड़े स्तर पर बढ़ते जा रहे प्रदूषण के कारण जनता बीमारियों का सामना कर रही है, जनता को शारीरिक, आर्थिक और मानसिक नुक़सान झेलना पड़ रहा है। गैस फ़ैक्टरी लगने के बाद परिस्थिति पहले से कहीं ज़्यादा गंभीर हो जाएगी।

(3) पंजाब में धरती के नीचे के पानी का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। राज्य के बड़े इलाक़े में पानी का स्तर गंभीर रूप से गिर चुका है। डार्क ज़ोन घोषित किए गए इलाक़ों में तो धरती का पानी निकालने की बिल्कुल भी गुंजाइश नहीं है। फ़ैक्टरी वाला सिधवाँ बेट का इलाक़ा भी डार्क ज़ोन घोषित किया गया है। यहाँ बड़े स्तर पर पानी का इस्तेमाल करने वाली कोई फ़ैक्टरी लगाई ही नहीं जा सकती। एक अंदाज़े के मुताबिक़ लग रही फ़ैक्टरी 100 एकड़ फ़सल से भी अधिक पानी इस्तेमाल करेगी। ऐसी हालत में इलाक़े के गाँवों, क़स्बों को इस फ़ैक्टरी के भयानक परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

(4) पूँजीपतियों को केवल अपना मुनाफ़ा प्यारा है। इसके लिए वे मज़दूरों की मेहनत की ही भयानक लूट नहीं करते, बल्कि श्रम क़ानूनों की भी भयानक उल्लंघना करते हैं। ज़िला लुधियाणा समेत राज्य और देश में फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों और आसपास रहने वाली अन्य आबादी की दुर्घटनाओं, प्रदूषण और बीमारियों से सुरक्षा की व्यवस्था संबंधी क़ानूनों का फ़ैक्टरी मालिकों द्वारा घोर उल्लंघन किया जाता है। इसमें पूरी सरकारी व्यवस्था पूँजीपतियों के साथ खड़ी रहती है। अब तो सरकारों द्वारा श्रम क़ानूनों में बदलाव करके पूँजीपतियों को क़ानूनी बंदिशों से और भी आज़ाद किया जा चुका है। मोदी हुकूमत ने 29 पुराने श्रम क़ानून ख़त्म करके पूँजीपतियों के पक्ष में 4 नए श्रम क़ानून/कोड बना दिए हैं। इस हालत में गाँव भूंदड़ी में लग रही फ़ैक्टरी दुर्घटनाओं, प्रदूषण और बीमारियों से सुरक्षा के कितने प्रबंध करेगी, इसका अंदाज़ा लगाना कोई मुश्किल नहीं। इससे भी स्पष्ट है कि गाँव भूंदड़ी और इलाक़े की जनता को दुर्घटनाओं और बीमारियों के बड़े खतरे की ओर धकेला

(पन्ना 7 पर जारी)

आबादी: एक समस्या?

(तीसरी किश्त)

– मनाली चक्रवर्ती

(आबादी को एक बड़ी समस्या के रूप में पेश किया जाता है। इसके बारे में मनाली चक्रवर्ती ने बहुत ही दिलचस्प लेख लिखा था, जो 'वैकल्पिक आर्थिक सर्वे, 2009-2010' में छपा था। 'मुक्ति संग्राम' में छापने के लिहाज से लेख थोड़ा लंबा होने के चलते हमने इसे किश्तों में प्रकाशित किया है। यह तीसरी और अंतिम किश्त है। पहली किश्त फ़रवरी 2024 और दूसरी किश्त मार्च 2024 अंक में छापी गई थी। – संपादक)

अच्छा चलिए, अब यह पता लगाते हैं कि एक इज़्ज़तदार आरामदायक ज़िंदगी बसर करने के लिए कौन-कौन-सी बुनियादी ज़रूरतें हैं और उन्हें सबको मुहैया करवाने में कितना ख़र्च आएगा? मेरे हिसाब से आम सहमति इस पर बनेगी कि सभी को एक न्यूनतम स्तर तक की शिक्षा मिलनी चाहिए, पीने और अन्य दैनिक कार्य के लिए स्वच्छ पानी और साफ़-सुथरा परिवेश, सभी को पर्याप्त पोषण और स्वास्थ्य सुविधा और चूँकि प्रजाति को बनाए रखने और मानव जाति की सर्वांगीण प्रगति के लिए आने वाली पीढ़ी का स्वस्थ होना सर्वोत्तम महत्त्व रखता है, प्रजनन और मातृत्व सहायक चिकित्सा की सुविधा सबको अधिकार के रूप में मिलनी चाहिए। पर इसमें तो बहुत ख़र्च आएगा! ज़ाहिर है पूरी दुनिया की आबादी की बात हो रही है। यू.एन.पी.डी. ने 1998 की अपनी रिपोर्ट में इस ख़र्च का एक मोटा-मोटा अंदाज़ा लगाया है। उन्होंने तमाम शोध के ज़रिए इस बात का अनुमान लगाया है कि इन सुविधाओं पर वर्तमान में हो रहे ख़र्च से कितना अधिक ख़र्च करने पर सबको ये बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जा सकती हैं।

तालिका 2

दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने पर अतिरिक्त ख़र्च

प्राथमिक सुविधाएँ	अतिरिक्त ख़र्च
सभी के लिए बुनियादी शिक्षा	6 अरब डॉलर
पीने का पानी और साफ़-सुथरा परिवेश बनाए रखने के लिए	9 अरब डॉलर
बुनियादी स्वास्थ्य और पर्याप्त पोषण	13 अरब डॉलर
महिलाओं के लिए प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य सुविधा	12 अरब डॉलर
यह कुल	40 अरब डॉलर

(स्रोत: ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 1998, ओवरव्यू)

जैसा कि तालिका 2 से समझ बनती है कि बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने के लिए 40 अरब डॉलर की विशाल राशि ख़र्च करनी पड़ेगी। यह वाक़ई एक बड़ी राशि है। यह आएगी कहाँ से? तिस पर ये आँकड़े 1995 के दामों के आधार पर आँके गए हैं। ज़ाहिर है इन 15 सालों में वह कुछ और बढ़ गई होगी। देखते हैं, दुनिया में हो रहे तमाम ज़रूरी-ग़ैर-ज़रूरी ख़र्चों में से कुछ कटौती करके इन बुनियादी ज़रूरतों को पूरा किया जा सकता है या नहीं? नीचे दी गई तालिका 3 में कुछ विशेष मदों के साथ उन पर सालाना व्यय का विवरण दिया गया है। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि ये आँकड़े भी 1995 के हैं और इनमें तो पिछले दशक में ग़ज़ब की बढ़ोत्तरी हुई है।

तालिका 3

कुछ विशेष मदों पर सालाना व्यय का विवरण

मद	सालाना व्यय
अमेरिका में सौंदर्यवर्धक सामग्री पर ख़र्च	8 अरब डॉलर
यूरोप में आइसक्रीम पर ख़र्च	11 अरब डॉलर
अमेरिका तथा यूरोप में इत्र/परफ़्यूम पर ख़र्च	12 अरब डॉलर
यूरोप तथा अमेरिका में पालतू जानवर के खाद्य पर ख़र्च	17 अरब डॉलर
जापान में व्यावसायिक मनोरंजन पर ख़र्च	35 अरब डॉलर
यूरोप में सिगरेट पर ख़र्च	50 अरब डॉलर
दुनिया-भर में नशीले पेय पर ख़र्च	400 अरब डॉलर
दुनिया-भर में सैन्यबल तथा अस्त्र-शस्त्र पर ख़र्च (2009)	1300 अरब डॉलर
हाल में आई मंदी से उबरने के लिए अमेरिकी सरकार द्वारा बेल आउट पैकेज (2009)	700 अरब डॉलर
संवेदी सूचकांक के भीषण रूप से गिर जाने पर और मंदी के कारण हुआ नुक़सान (2009)	970 अरब डॉलर
यूरोप में शराब पर ख़र्च	105 अरब डॉलर

(स्रोत: ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 1998, ओवरव्यू)

दब गई ना दाँतों तले उँगली? अब आप सर खुजला रहे होंगे कि इतनी-इतनी "गंभीर" ज़रूरतों के रहते आम आबादी की शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी-जैसी मामूली ज़रूरतों के लिए कैसे पैसे निकलेंगे? अब अगर हम सौंदर्यवर्धक सामग्री को छोड़ दें, या फिर आइसक्रीम खाने की ललक को बने रहने दें, पालतू जानवर की खुराक पर हस्तक्षेप ना भी करें, तब भी महज़ यूरोप में सिगरेट पर सालाना ख़र्च से बुनियादी सारी ज़रूरतें दुनिया-भर में उपलब्ध करवाई जा सकती हैं। अगर विकसित देशों में शराब के बिना काम चले, तो इन सबके साथ सबके लिए पर्याप्त आवास भी बन सकता है। मादक पेय के सेवन में महज़ 10 प्रतिशत कटौती करने पर सारी बुनियादी सुविधाएँ सबको उपलब्ध करवाई जा सकती हैं। है ना ताज्जुब की बात! अच्छा छोड़िए, भोग-विलास की वस्तुओं को अगर छोड़ भी दिया जाए, तो दुनिया-भर में जहाँ सबसे ज़्यादा ख़र्च होता है, वह सैन्य बल और अस्त्र-शस्त्र में। वर्तमान में करीबन 13 खरब डॉलर सिर्फ़ मरने-मारने पर ख़र्च हो जाता है। वह भी सरकारी ख़र्च। आम लोगों के ख़ून-पसीने से उपजा पैसा। इसमें निजी ग़ैर-सरकारी अस्त्र-बल तो अभी शामिल ही नहीं। इस रक़म का अगर सिर्फ़ तीन प्रतिशत ख़र्च किया जाए, तो दुनिया की पूरी मौजूदा आबादी तमाम बुनियादी सुविधाओं के साथ जी पाएगी। क्या यह एक नाजायज़ कटौती है? और क्या पता जीवन-स्तर बेहतर होने पर शायद इतनी बड़ी तादाद में मरने-मारने की ज़रूरत ही ख़त्म हो जाए।

आइए एक और विशाल ख़र्च – शेयर बाज़ार – का भी थोड़ा विश्लेषण करें। ज़्यादा गहराई में ना जाते हुए बस यह समझें कि शेयर बाज़ार की सट्टेबाज़ी के चलते पिछले साल दुनिया की अर्थव्यवस्था में हज़ारों अरब रुपयों का नुक़सान हुआ, करोड़ों लोग बेघर हो गए, दसियों लाख की नौकरी चली गई, सैकड़ों साल पुराने बैंक ढह गए, दसियों करोड़ लोगों की जीवन-भर की पूँजी साफ़ हो गई। दुनिया-भर में आर्थिक मंदी का यह विकराल प्रकोप किसी विश्वयुद्ध से कम विनाशकारी ना था। अब आप ही बताइए कि ख़र्च की सूची क्या साफ़-साफ़ यह नहीं दर्शाती कि दुनिया के कर्णधारों की प्राथमिकताओं में ग़रीबी, अशिक्षा, कुपोषण, ख़राब स्वास्थ्य, बेरोज़गारी, बदहाली-जैसी समस्याएँ हैं ही नहीं। मुँह से यह प्रतापी तबक़ा चाहे कुछ भी बोले, उसकी कथनी और करनी में खाई काफ़ी चौड़ी है। शायद इसीलिए जब-जब ग़रीब बहुजन इनके ख़िलाफ़ थोड़ी-सी भी आवाज़ उठाते हैं, या रत्ती-भर भी जवाबदेही की उम्मीद करते हैं, ताक़तवर लोग उन्हें कुचलने का कार्यक्रम बनाते हैं। इराक़-अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध में अमेरिका ने अब तक 7,000 लाख डॉलर ख़र्च कर दिया और तमाम आश्वासनों के बाद भी वहीं जमा हुआ है। ग़रीबी हटाने की बजाय अरबों रुपए और डॉलर ग़रीबों को हटाने में लगा देते हैं, पर दुनिया में असमानता की गहरी खाई रत्ती-भर भी नहीं भरती, बल्कि और विकराल होती जाती है। आप ही बताइए, थोड़ा ख़ून-ख़राबा कम करने का प्रयास और बस थोड़ा ही सट्टेबाज़ी कम करने का आग्रह, क्या एक नाजायज़ माँग है? जवाब देने से पहले उस जन्म लेते ही मौत की तैयारी करने वाले बच्चे का चेहरा याद कर लीजिए, शायद जवाब देना फिर उतना मुश्किल ना हो।

इतने सारे तर्कों के आधार पर क्या हम यह निष्कर्ष निकालें कि आबादी समस्या है ही नहीं? आइए, सफ़र के इस आख़िरी पड़ाव में इस पर भी चर्चा करते हैं। सबसे पहले हम यह समझ बनाए कि आबादी बढ़ती क्यों है? जन्मदर के बारे में हम लोगों ने पर्याप्त चर्चा की है, पर उसके अलावा मृत्युदर में भी कमी,

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

या फिर दूसरी तरह कहें तो औसत संभावित आयु में वृद्धि से भी आबादी बढ़ती है। लोग ज़्यादातर लंबी आयु तक जीवित रहेंगे, तो ज़ाहिर है कि आबादी स्वतः बढ़ेगी। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि 1950-55 में दुनिया-भर का औसत संभावित जीवन-काल तकरीबन 46 साल हुआ करता था। एक अर्धशताब्दी के अंतराल में ही यह 20 साल बढ़कर 2000-2005 में 65 साल हो गया। विकसित देशों में तो औसत संभावित आयु 80 साल को छू रही है; विकासशील देशों में भी वह करीबन 63-65 वर्ष है। इसके मुक़ाबले 1850 के आसपास इंग्लैंड की सूती मिलों के गढ़ लंकाशायर में औसत मृत्यु की उम्र महज़ 17 साल हुआ करती थी (पूँजी, खंड 1)। दुनिया की आबादी में सालाना बढ़ोत्तरी की दर पिछले चालीस-पैंतालीस सालों में लगातार घटी है। 1965 में सालाना आबादी में बढ़ोतरी की दर तकरीबन 2.1 प्रतिशत थी, जो घटकर महज़ 1.14 प्रतिशत रह गई है। भारत में यह दर साल 1986 में 2.16 प्रतिशत हुआ करती थी, जो घटकर साल 2008 में 1.34 प्रतिशत हो गई (वर्ल्ड बैंक डेवलपमेंट इंडीकेटर्स)। यानी आबादी बढ़ने का मुख्य कारण यह नहीं है कि हम लोग बेलगाम खरगोशों की तरह झुंड-के-झुंड बच्चे जनते जा रहे हैं, बल्कि शायद कीड़े-मकोड़े या मक्खियों की तरह बेमौत मर नहीं रहे हैं। किसी भी समूह के लिए यह एक शानदार उपलब्धि है, एक अपार ख़ुशी और गर्व की बात! पर ताज्जुब की बात है कि हमारी सरकार, नीति बनाने वाले विशेषज्ञ, अमीर तबक़ा, बुद्धिजीवी वर्ग और काफ़ी संख्या में मध्यमवर्गीय लोग भी इसका मातम मना रहे हैं। क्या वह इस बात से उल्लासित नहीं हैं कि जहाँ हमारे दादा-नाना 40-42 साल में ही मृत्यु की तैयारी में जुट जाते थे, वहीं आज ज़्यादातर लोग 65-70 वर्ष तक तत्पर और पूर्णतः परिपूर्ण जीवन जीने की संभावना रखते हैं?

हमारा मानना है कि इन समझदारों को आबादी से जुड़ी आसन्न एक और विकराल समस्या पर ग़ौर करना चाहिए। किसी भी समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन, मानव संसाधन है – स्वस्थ, सबल बच्चे और युवा वर्ग। अब यह गहन चिंता की बात है कि दुनिया के कई देशों में जन्मदर इतनी भी नहीं है कि आबादी आज के स्तर तक भी बनी रहे। रूस, जर्मनी, चेक रिपलिब्क, पोलैंड, इटली, जापान और आस्ट्रिया-जैसे देशों में तो आबादी की बढ़ोत्तरी दर शुन्य से कम है – यानी उनकी आबादी क्रमशः घटती जा रही है। विशेषज्ञों का मानना है कि दुनिया की आबादी, जो आज तकरीबन 6.5 अरब है, साल 2040 तक तो रेंगती हुई बढ़ेगी और करीब 7.6 अरब तक पहुँच जाएगी, उसके बाद साल-दर-साल घटेगी और इक्कीसवीं सदी के अंत तक वह घटकर पाँच अरब रह जाएगी। पर चिंता का विषय यह है कि उस आबादी में बच्चे और युवा वर्ग के लोगों का अनुपात आज के मुक़ाबले कहीं कम होगा। आज भी कई विकसित देशों में आबादी की औसत उम्र 35 से 50 वर्ष है, पर इस सदी के अंत तक बहुसंख्यक लोग 65 या उससे ज़्यादा उम्र के होंगे। और यह हाल सिर्फ़ यूरोप, अमेरिका में ही नहीं, बल्कि चीन, भारत और अफ़्रीकी देशों में भी होगा। क्या आप कल्पना कर सकते हैं इस भीषण विभीषिका का, जहाँ बच्चों की किलकारियाँ, युवाओं का अदम्य उत्साह बहुसंख्यक बुज़ुर्गों की कराह के नीचे दब जाएगी? कहाँ से आएँगी नई संभावनाएँ, नई ऊर्जा, नए विचार, नए प्रयोग? किसी भी प्रजाति के लिए यह एक भीषण संकट का विषय है। विशेषज्ञ इस आसन्न परिस्थिति को आबादी का असली संकट (the real demographic crisis) मानते हैं। किसी ने ठीक ही कहा था कि बीमारी की सही डॉयगनोसीस (यानी पहचान) करने से ही हम उसका सही उपचार कर सकते हैं। यह पहला और उचित क़दम लिए बिना उपचार करना, अंधे के हाथ में छुरी पकड़ाने के बराबर है – मरीज की गर्दन भी कट सकती है। अब यह हम सब पर है कि हम अपनी सारी ऊर्जा, उद्यम इस बात पर लगाएँ कि हमारे सबसे अनमोल संसाधन – मानव, उसकी ज़िंदगी कैसे और ख़ुशहाल बनाएँ, उनकी बुनियादी ज़रूरतें मूल अधिकार-स्वरूप कैसे उपलब्ध कराएँ, ताकि हर बच्चा, बूढ़ा और युवा, नर-नारी, सभी अपनी सृजनशक्ति का भरपूर इस्तेमाल कर सकें और तमाम संभावनाएँ चारों तरफ़ विकसित हो पाएँ। या फिर एक विक्षिप्त शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सर छुपाए इन संभावनाओं की निर्मम हत्या करने की योजना बनाएँ? फ़ैसला आप पर है, मुझ पर है, हम सब पर है। इतिहास के पन्ने पलटते हुए भविष्य की पीढ़ियाँ हमारी कमजोरियों पर हमदर्दी तो जता सकती हैं; हमारी नाकाम, आंशिक कोशिशों से इत्तेफ़ाक रख सकती हैं; पर हमारी निष्क्रियता या बेईमानी से उठाए गए क़दम को माफ़ नहीं करेंगी, कभी नहीं।

संदर्भ सूची

1. एफ़.एम. लाप्पे, जोसेफ़ कॉलिंस, पीटर रोसेट और लुईस एस्परजा, 1998, वर्ल्ड हंगरः टवेल्व मिथ्स, ग्रोव प्रेस, न्यूयॉर्क

2. कार्ल मार्क्स, पूँजी खंड 1

3. थामस माल्थस, 1798, एन एसे ऑन प्रिंसिपल ऑफ़ पापुलेशन

4. स्टीवेन मोशर, 2008, पॉपुलेशन कंट्रोल रीयल कॉस्ट्स, इल्यूजरी बेनेफ़िट्स ट्रांजैक्शन पब्लिशर्स

5. ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1998, ओवरव्यू: चेंजिग टुडेज़ कंज़म्प्शन पैटर्न्स फ़ॉर टुमारोज़

6. ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2009

लुधियाणा में बड़ी गिनती में खुल रहे शराब के ठेके

चुनाव के समय हर चुनावी राजनीतिक पार्टियाँ लोगों को लुभाने के लिए बहुत से वादे करती हैं। इन वादों में से एक वायदा नशा मुक्त पंजाब बनाने का होता है। पंजाब की आप सरकार ने भी दूसरे वादों के साथ यह वादा लोगों से किया था। लेकिन जीतने के बाद दूसरे वादों की तरह यह वादा भी झूठा ही निकला।

पुराने समय में, जब भगवंत मान अभी राजनीति में नहीं आया था और अपनी बातों से लोगों का मनोरंजन करता था, उस समय नशों के ख़िलाफ़ तरह-तरह के व्यंग्य किया करता था। उसने एक बार कहा था कि एक दिन पंजाब का हाल यह होगा कि हर गली और हर मोड़ पर शराब का ठेका होगा। लोग राहगीरों को ठेकों के हिसाब से पता बताया करेंगे। भगवंत मान का कहा आज उसकी अपनी सरकार में सच साबित हो गया है।

लुधियाणा की बात करें, तो जबसे आम आदमी पार्टी पंजाब की राजगद्दी पर बैठी है, उसके बाद शहर में शराब के ठेकों की संख्या बहुत ज़्यादा बढ़ गई है। हर चौक और हर मुहल्ले में ठेका खुल रहा है। पहले भी यहाँ ठेकों की कोई कमी नहीं थी। ताजपुर रोड पर स्थित ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी के इलाक़े में पहले तीन ठेके थे, लेकिन अब तीन और खुल गए हैं। यही हाल अन्य इलाक़ों का भी है।

लेकिन दूसरी तरफ़ ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी सहित बहुत बड़े इलाक़े जहाँ हज़ारों की संख्या में परिवार रहते थे, केवल एक ही सरकारी स्कूल है। लोग अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में पढ़ाने के लिए मजबूर हैं। इस बड़े क्षेत्र में एक जच्चा-बच्चा अस्पताल है जिसकी हालत बुरी है। और कोई सरकारी डिस्पेंसरी या अस्पताल इस इलाक़े में नहीं है। पर सरकार का इन सुविधाओं पर कोई ध्यान नहीं है। सरकार को सबसे ज़्यादा चिंता यह है कि लोगों तक शराब कैसे पहुँचाई जाए।

बदलाव की बातें करने वाली इस सरकार का असल चेहरा लोगों के सामने नंगा होता जा रहा है। लोग जान रहे हैं कि यह सरकार भी दूसरी सरकारों की तरह अमीरों की सरकार है। इसलिए लोग चाहे छोटे रूप में ही सही पर इनके एम.एल.ए. दफ़्तरों पर किसी ना किसी रूप में अपना विरोध जताते रहते हैं।

– जगदीश

गैस फ़ैक्टरी के निर्माण को रोकने के लिए जनता संघर्ष की राह पर

(पन्ना 5 से आगे)

जा रहा है।

(5) फ़ैक्टरी लगाने के लिए इलाक़े की जनता से तो दूर, गाँव भूंदड़ी की जनता की भी सहमति नहीं ली गई। यहाँ तक कि गाँव की पंचायत से भी 'कोई एतराज़ नहीं सर्टिफ़िकेट' (एन.ओ.सी.) नहीं लिया गया। कृषि यूनिवर्सिटी, लुधियाणा के अफ़सरों का कहना है कि उन्हें भी इस फ़ैक्टरी की कोई जानकारी नहीं थी। कई महीनों से मज़दूर-किसान संगठनों द्वारा फ़ैक्टरी मैनेजमेंट से पूछा जा रहा है कि किस चीज़ की फ़ैक्टरी लग रही है। लेकिन किसी ने कुछ नहीं बताया। अब जब संघर्ष शुरू हो गया है, तो भी फ़ैक्टरी मालिकों द्वारा सी.एन.जी. गैस बनने और अन्य चीज़ों के बारे में गोल-माल बातें ही की जा रही हैं। गाँव और इलाक़े की जनता से ना पूछना और ना ही कोई जानकारी देना, पंचायत से एन.ओ.सी. ना लेना, पूछने पर कुछ भी ना बताया जाना, बल्कि अंधेरे में रखना आदि सब यही साफ़ करता है कि दाल में कुछ काला नहीं है, बल्कि पूरी दाल ही काली है। इससे भी स्पष्ट है कि जनता को फ़ैक्टरी लगने के भयानक नतीजे भुगतने पड़ेंगे।

संघर्ष कमेटी के मुताबिक़ इसमें कोई शक नहीं कि गैस फ़ैक्टरी के निर्माण को रोकने के अलावा अन्य कोई हल नहीं है। सरकारें, पूरी सरकारी व्यवस्था फ़ैक्टरी मालिकों के पक्ष में है। इसलिए संघर्ष कमेटी ने इलाक़े की जनता से पुरज़ोर अपील की है कि इस संघर्ष में हर पक्ष से बड़े स्तर पर भागीदारी करें। उन्होंने पंजाब के अन्य सभी इंसाफ़पसंद लोगों से इस जायज़ संघर्ष की बढ़-चढ़कर हिमायत करने के लिए भी अपील की है।

– संवाददाता

153वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

पेरिस कम्यून
मज़दूरों का पहला राज्य

153 साल पहले, 18 मार्च 1871 को, अंतरराष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के तीन मील पत्थरों में से पहले – पेरिस कम्यून के नाम से जाने जाने वाले राज्य का जन्म हुआ था। दो और मील पत्थर हैं – अक्टूबर 1917 में रूस के मज़दूरों की महान समाजवादी क्रांति और 1966 में चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति। मज़दूरों का पहला राज्य भले ही 28 मई 1871 तक केवल 72 दिन ही वजूद में रह सका, पर इसने अपनी थोड़ी-सी उम्र में विश्व मज़दूर आंदोलन को नया जोश और रास्ता दिया। इसने क्रांति के विज्ञान के विकास में बेहद महत्वपूर्ण योगदान दिया। पेरिस कम्यून के लिए लड़े हज़ारों मज़दूरों का भले ही क़त्लेआम कर दिया गया, लेकिन वे शहीद होकर अमर हो गए। पेरिस कम्यून की कहानी अमर हो गई, जो 153 साल बाद भी लूट-शोषण से मुक्त समाज के निर्माण के लिए मज़दूरों को संगठित होने के लिए, अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है, राह दिखाती है।

फ्रांस, यूरोप का वह देश था जहाँ इंग्लैंड के बाद पूँजीवाद का सबसे ज़्यादा विकास हुआ था। यहाँ भी मज़दूरों के हालात बहुत भयंकर थे जिनके विरोध में मज़दूर संघर्ष विकास कर रहा था। फ्रांस के दूसरे सबसे बड़े शहर और रेशम उद्योग के केंद्र लियों में 1830 के दशक में वेतन बढ़ोतरी और अन्य माँगों के लिए मज़दूरों की बड़ी बग़ावतें सामने आईं। मज़दूरों ने लियों शहर पर क़ब्ज़ा तक कर लिया। इस संघर्ष को बड़ी फ़ौजी ताक़त से भयंकर दमन से कुचला जा सका। 1848 में फ्रांस, जर्मनी, हंगरी, रूस, ऑस्ट्रिया, इटली, स्पेन, पोलैंड समेत यूरोप के अलग-अलग देशों में राजशाही और अन्य राजनीतिक संस्थाओं के ख़िलाफ़ क्रांतिकारी बग़ावतें उठ खड़ी हुईं। अन्य मेहनतकशों समेत मज़दूर वर्ग ने इन बग़ावतों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। लेकिन पूँजीपति वर्ग ने ज़्यादातर जगहों पर क्रांति से ग़द्दारी की। क्रांति की हार हुई। लेकिन यूरोप अब पहले वाला यूरोप नहीं रहा था। इसी तरह फ्रांस भी बदल गया था। लेकिन इन असफल क्रांतियों ने फ्रांस समेत यूरोप के अन्य देशों के मज़दूर वर्ग को बड़े स्तर पर राजनीतिक तौर पर जागरूक करने में भूमिका निभाई। इन असफल इंक़लाबों ने मज़दूर वर्ग को क्रांतिकारी राजनीतिक लड़ाई लड़ना सिखाया।

1847 में मज़दूरों का पहला अंतरराष्ट्रीय संगठन वजूद में आया जिसका नाम 'कम्युनिस्ट लीग' रखा गया। इसमें कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स भी शामिल हुए। कम्युनिस्ट लीग द्वारा कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स का लिखा बेहद महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज़ – कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र प्रकाशित होता है। घोषणापत्र ने स्पष्ट कर दिया कि उत्पादन शक्तियों के विकास में बाधा बनने वाले उत्पादन संबंधों ने आख़िर ख़त्म होना ही होता है। चाहे पूँजीवादी व्यवस्था सामंती व्यवस्था के मुक़ाबले प्रगतिशील है, पूँजीपति वर्ग ने ऐतिहासिक तौर पर क्रांतिकारी भूमिका निभाई है, लेकिन निजी संपत्ति, लूट-शोषण पर टिकी यह व्यवस्था भी आर्थिक संकट में फँसकर ख़त्म हो जाएगी। उत्पादन के साधनों का विकास पूँजीवादी व्यवस्था का ख़ात्मा, कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करेगा। इस तरह मज़दूर वर्ग की वैज्ञानिक क्रांतिकारी विचारधारा जन्म लेती है। कम्युनिस्ट घोषणापत्र में पेश वैज्ञानिक समाजवाद के विचार मार्क्स-एंगेल्स के विचार शून्य से पैदा नहीं हुए, बल्कि ये वर्ग संघर्ष का उस समय तक का सबसे उच्चतम निचोड़ थे।

यूरोप में साल 1848 के असफल इंक़लाबों के बाद मज़दूर आंदोलन उतार की हालत में चला गया था। बीस वर्षों बाद दूसरी अंतरराष्ट्रीय बनने के समय मज़दूर आंदोलन फिर से उभार में था। पहली अंतरराष्ट्रीय के गठन ने आंदोलन को और ज़्यादा बल प्रदान किया। फ्रांस में भी मज़दूर वर्ग अँगडाई ले रहा था।

फ्रांस के मज़दूर वर्ग ने पूँजीवादी जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष में उदार पूँजीवाद के साथ विशाल रूप में हिस्सा लिया और इससे कहीं ज़्यादा क्रांतिकारी आकांक्षों का इज़हार किया था। इन संघर्षों में शामिल होते हुए मज़दूरों ने अपनी माँगों के लिए, चाहे ये बहुत बार बहुत असपष्ट और उलझी हुई होती थीं, संघर्ष का झंडा बुलंद किया था। मज़दूरों ने हथियारबंद बग़ावतें भी की थीं। इन संघर्षों में शामिल होते हुए मज़दूरों की राजनीतिक समझदारी का विकास होता गया। इस तरह 1848 की नाकाम बग़ावत, इसके पहले और बाद के छोटे-बड़े, संघर्षों में फ्रांस के मज़दूर वर्ग ने काफ़ी तज़ुर्बा और राजनीतिक समझदारी हासिल की थी। राजनीतिक समझदारी के इस विकास के बिना पेरिस कम्यून का वजूद में आना संभव नहीं था।

1852 में सत्ता हासिल करने वाले नेपोलियन तीसरे के राज्य (दूसरी फ्रांसीसी सल्तनत) के दौरान फ्रांस में पूँजीवाद का तेज़ी से विकास हुआ। पर राज्य व्यवस्था में भ्रष्टाचार भी शिखर पर था। दूसरे राष्ट्रों-देशों के इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने, अपने राज्य का ज़्यादा से ज़्यादा विस्तार करने की लालसा बेहद तीखी थी। कहने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूर वर्ग की हालत बहुत बुरी थी। 16 जुलाई 1870 को फ्रांस द्वारा प्रशिया किंगडम के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा हुई थी। पर प्रशिया किंगडम के नेतृत्व वाली उत्तरी जर्मन कंफ़ेडेरेशन के पास फ्रांस से कहीं ज़्यादा अनुशासित और ताक़तवर फ़ौज थी। इस जंग में फ्रांसीसी सल्तनत की फ़ौज की भारी हार हुई है। जब यह ख़बर पेरिस पहुँची कि नेपोलियन तीसरे ने प्रशिया के आगे हार मान ली है, तो दूसरी सल्तनत का अंत करते हुए 4 सितंबर 1870 को पेरिस में राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार बनती है। इस सरकार में ज़्यादातर पूँजीवादी प्रतिनिधि शामिल थे। जर्मन फ़ौज उत्तरी फ्रांस में इस नई सरकार को भी भारी मात देती है। जिसके बाद 19 सितंबर 1870 से 28 जनवरी 1871 तक पेरिस की घेराबंदी कर दी जाती है। 28 जनवरी 1871 को राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार द्वारा भी हार मान ली जाती है और कई इलाक़े प्रशिया को देने के लिए तैयार हो जाती है।

युद्ध के समय पेरिस की जर्मन फ़ौजों की रक्षा के लिए शहर के मज़दूरों को 'नेशनल गार्ड' में बड़े स्तर पर भर्ती किया गया। मज़दूरों की इसमें बड़ी बहुसंख्या थी। मज़दूर जर्मन फ़ौजों से फ्रांसीसी इलाक़ों का क़ब्ज़ा छुड़वाने के लिए युद्ध जारी रखने के पक्ष में थे। पर नई सरकार भी हथियार डाल चुकी थी। इस हार के बाद भी पेरिस के मज़दूर, हथियार डालने से इनकार कर देते हैं, वे केवल युद्धबंदी ही करते हैं। जर्मन फ़ौजी पेरिस के मज़दूरों से डरकर फ्रांसीसी सरकार द्वारा दिए गए इलाक़ों से आगे क़दम उठाने की कोशिश नहीं करते। इस तरह हार के वक़्त भी पेरिस के हथियारबंद

(अगले पन्ने पर जारी)

पेरिस कम्यून ज़िंदाबाद!

पेरिस की औरतें और बच्चे तोपों को मोंतमार्त्र की पहाड़ी पर लेकर जाते हुए

(पिछले पन्ने से आगे)

मज़दूर पूरे रौब के साथ खड़े थे।

***

युद्ध ख़त्म होने के बाद फ्रांसीसी सरकार का नया प्रमुख थियेर बना। उसने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि भूमिपतियों और पूँजीपतियों का राज्य उस समय तक ख़तरे में रहेगा, जब तक मज़दूरों के हाथ में हथियार हैं। थिएर ने 18 मार्च को मज़दूरों से हथियार छीनने के लिए फ़ौज भेजी। इसका मज़दूरों ने ज़ोरदार विरोध किया। पेरिस के मज़दूर उठ खड़े हुए और उन्होंने तीखी टक्कर दी। मज़दूरों को निहत्था करने की फ्रांसीसी पूँजीपतियों की नापाक कोशिश नाकाम कर दी गई। पेरिस पर मज़दूरों का क़ब्ज़ा हो गया। मज़दूरों की सरकार बनाने के लिए चुनावों की घोषणा कर दी गई। सभी को वोट के अधिकार के आधार पर 26 मार्च को पेरिस कम्यून का चुनाव हुआ, जिसमें दर्ज़ी, नाई, मोची, प्रेस मज़दूर आदि कम्यून के सदस्य चुने गए। 28 मार्च को पेरिस कम्यून की स्थापना की घोषणा कर दी गई, जिसने नेशनल गार्ड की केंद्रीय कमेटी से पेरिस की सत्ता अपने हाथ में ले ली। यह सरकार विधानसभा और कार्यपालिका दोनों ही थी। इस तरह मज़दूरों का पहला राज्य, अंतरराष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन का पहला मील का पत्थर – 'पेरिस कम्यून' – इतिहास के रंगमंच पर आया। इस मज़दूर राज्य द्वारा मज़दूर वर्ग के पक्ष में ऐसे क़दम उठाए गए, जिन्होंने पुरानी सामाजिक व्यवस्था पर ज़ोरदार चोट की। ऐसे जनवादी क़दम उठाए गए, जो तब तक किसी भी पूँजीवादी जनवादी राज में नहीं देखे गए थे। ये सभी क्रांतिकारी और जनवादी क़दम या तो पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था में संभव ही नहीं थे या जनवादी पूँजीवादी सियासतदानों की बुज़दिली के कारण कभी उठाए नहीं गए थे। इस तरह पेरिस कम्यून ने पूँजीवादी जनवादी राज्य पर मज़दूर वर्ग के जनवादी राज्य की श्रेष्ठता को लागू रूप में दिखाया।

कम्यून के किसी अधिकारी के और इसीलिए कम्यून के अधिकारियों के भी, वेतन 6000 फ्रांक (4800 मार्क) से ज़्यादा ना रखने का फ़ैसला किया गया। इस तरह मज़दूरों और मंत्रियों-अफ़सरों के वेतन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ ख़त्म किया गया। लाज़िमी भर्ती और स्थाई फ़ौज का ख़ात्मा कर दिया गया और नेशनल गार्ड के एकमात्र फ़ौज होने की घोषणा की गई, जिसमें हथियार उठाने योग्य सभी नागरिकों को भर्ती करने का क़ानून बनाया गया। कम्यून में विदेशियों को भी पद दिए गए। कम्यून ने घोषणा की कि – "कम्यून का झंडा विश्व गणतंत्र का झंडा है"। उसने अक्टूबर 1870 से अप्रैल 1871 तक का सारे मकानों का किराया माफ़ कर दिया और इस समय का जो किराया अदा किया जा चुका था, उसे आगे के लिए पेशगी मान लिया गया।

कम्यून ने धर्म से राज्य को अलग करने का हुक्म जारी किया। धार्मिक गतिविधियों के लिए सरकारी भुगतानों की मनाही की गई। 5 अप्रैल को वर्साय के फ़ौजियों द्वारा कम्यून के क़ैदी फ़ौजियों को रोज़ गोली से उड़ाए जाने के जवाब में कम्यून ने क़ैदियों को केवल क़ैद रखने का ही फ़ैसला किया। कम्यून गार्डों ने गिलोटीन को बाहर निकाल कर उसे सार्वजनिक जोश-ओ-खरोश के साथ जला डाला। गिलोटीन मशीन से लोगों का सिर धड़ से अलग करके मौत की सज़ा दी जाती थी। 75 वर्षों के दौरान सैकड़ों लोगों को इससे मारा गया था। कम्यून ने दमनकारी सत्ता की दहशत के इस प्रतीक का नाश कर दिया गया। कम्यून ने वानदोन चौक के विजेता-स्तंभ को गिरा देने का फ़ैसला किया। यह अंध-राष्ट्रवाद और अन्य राष्ट्रों के प्रति नफ़रत भड़काने का प्रतीक था।

कम्यून ने कारख़ानेदारों द्वारा बंद किए गए कारख़ानो को दुबारा चलाने, इसलिए मज़दूरों की सहकारी सभाओं को बड़े संगठन में संगठित करने की योजना बनाने के निर्देश जारी किए। बेकरी मज़दूरों की रात की शिफ़्ट में काम करने की मनाही कर दी गई। मज़दूरों की भारी लूट के केंद्र मज़दूर भर्ती दफ़्तरों को भी बंद कर दिया गया। गिरवी रखने वाली दुकानों को इस आधार पर बंद करने का हुक्म जारी किया कि इनके द्वारा निजी फ़ायदे के लिए मज़दूरों की लूट-खसोट की जाती है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने फ्रांस में घरेलू जंग की भूमिका में लिखा है कि इस प्रकार 18 मार्च के बाद पेरिस के आंदोलन का वर्ग चरित्र, जो पहले विदेशी हमलावरों के ख़िलाफ़ युद्ध के चलते पृष्ठभूमि में दबकर रह गया था, खुलकर और उग्र रूप में सामने आ गया।

कम्यून ने अपने छोटे-से वक़्फ़े में जो क़दम उठाए उससे ज़्यादा उसके लिए संभव नहीं थे। अप्रैल का महीना ख़त्म होते ही कम्यून को वर्साय में बैठी फ्रांसीसी सरकार के ख़िलाफ़ युद्ध में उतरना पड़ा। पेरिस की दहलीज़ पर ज़बरदस्त लड़ाई के दौरान मज़दूरों ने पूँजीपतियों की भाड़े की फ़ौज को सख़्त टक्कर दी। लेकिन 21 मई को थियेर की जालिम फ़ौजें पेरिस के अंदर घुस गईं मज़दूरों ने कम्यून की रक्षा के लिए 8 दिन जुझारू, बहादुरी भरी जंग लड़ी। लेकिन इस जंग में मज़दूरों की हार हुई और 28 मई 1871 को पेरिस कम्यून का अंत हो गया।

इस हार के बाद जून के अंत तक, पूरा एक महीना पेरिस में मज़दूरों, मेहनतकशों का क़त्लेआम चलता रहा। पेरिस को ख़ून में डुबा दिया गया। शहर की हर गली-दीवार लाल कर दी गई। फ्रांसीसी हुक्मरानों ने 1848 में मज़दूरों के विद्रोह को कुचलने के लिए मौत का भयंकर तांडव रचा था। पेरिस के 1871 के क़त्लेआम के सामने वह छोटा पड़ गया! पेरिस नागरिकों को क़तारों में खड़ा करके हाथों के घट्ठे देखकर मज़दूरों को अलग किया गया और गोलियों से भून दिया गया। क़त्लेआम करने के लिए मशीनगन जैसे विशेष हथियार इस्तेमाल किए गए, क्योंकि आम बंदूक़ से ज़्यादा समय लग रहा था। बूढ़े मज़दूरों को चुन-चुनकर यह कहते हुए गोलियाँ मारी गईं कि इन्होंने बार-बार बग़ावतें की हैं और ये ख़तरनाक अपराधी हैं। मेहनतकश महिलाओं का यह कहते हुए क़त्लेआम किया गया कि ये "महिलाएँ अग्निबम हैं" और "ये मरने के बाद ही महिलाओं जैसी लगती हैं"। बच्चों को यह कहते हुए गोलियाँ मारकर शहीद कर दिया गया कि ये बड़े होकर बाग़ी बनेंगे।

इस जंग और थियेर की दमनकारी फ़ौजों द्वारा पेरिस में किए गए भारी क़त्लेआम के दौरान 26 हज़ार मज़दूर-मेहनतकश शहीद हुए। पेरिस कम्यून का अंत हो गया था, लेकिन कम्यून के शहीद योद्धा इतिहास में अमर हो गए; हक़, सच, इंसाफ़ के लिए लूट, दमन, अन्याय के ख़िलाफ़ उनकी जंग, मज़दूरों के पहले राज्य की कहानी, अमर हो गई, मज़दूरों-मेहनकशों के लिए मीठे-कड़वे तजुर्बों, सबक़ों का अमुल्य भंडार दे गई जिस के सहारे आगे चलकर विश्व के मज़दूरों ने वर्ग संघर्षों के नए शिखरों को छूआ। लूट, अन्याय के ख़िलाफ़ जंग में मज़दूरों ने पेरिस कम्यून के अनुभवों-सबक़ों को अपनाकर पूँजीपति वर्ग को वर्ग संघर्ष के अनेक मोर्चों पर धूल चटाई, नए मील के पत्थर स्थापित किए।

पेरिस कम्यून के अहम सबक़

1. पेरिस कम्यून द्वारा मज़दूर वर्ग ने एक बार फिर साबित किया कि सारे दबे-कुचले लोगों में से मज़दूर वर्ग ही सबसे ज़्यादा क्रांतिकारी वर्ग है। इसने साबित किया कि इसके नेतृत्व में ही मज़दूरों समेत और मेहनतकशों के लिए जनवाद प्राप्त किया जा सकता है, यानी समाजवादी जनवाद हासिल किया जा सकता है। इसने साबित किया कि मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में पूँजीवाद का तख़्तापलट करना पूरी तरह संभव है।

2. पेरिस कम्यून, जिसने लोगों की रज़ा और ताक़त से जन्म लिया, लोगों द्वारा चुना गया था। इसके कार्यों में लोगों की पहलक़दमी भरी लगातार और भारी भागीदारी और चौकसी थी। पेरिस कम्यून ने मानव इतिहास के इस सबक़ को ज़ोरदार ढंग से उभारा कि "जनता ही इतिहास की असल निर्माता है"।

3. पेरिस कम्यून के सामने मज़दूर आंदोलन का यह महत्वपूर्ण निचोड़ पड़ा था कि समाजवाद स्थापित करने के लिए मज़दूर वर्ग की तानाशाही कायम करने की

(अगले पन्ने पर जारी)

पेरिस कम्यून की स्थापना पर मेहनतकश जनता का जश्न

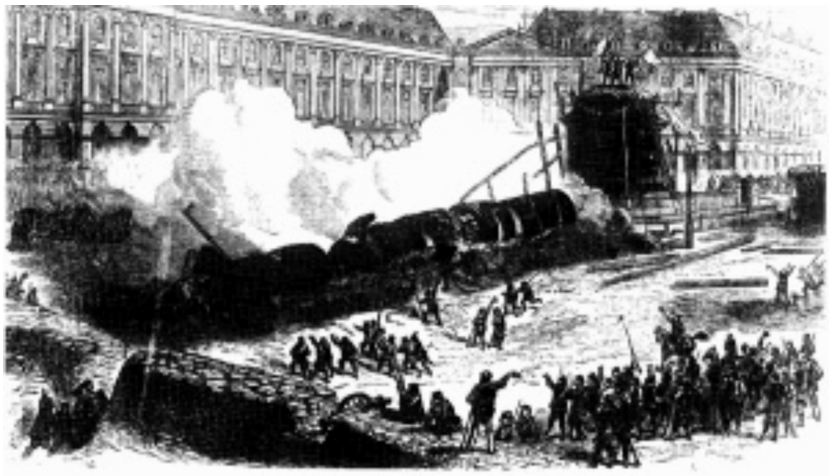

अंधराष्ट्रवाद-विस्तारवारद के प्रतीक विजेता-स्तंभ को मज़दूरों ने धवस्त कर दिया

(पिछले पन्ने से आगे)

ज़रूरत है। पेरिस कम्यून ने यह भी साबित किया कि मज़दूर वर्ग शोषक वर्ग की राज्य मशीनरी का इस्तेमाल करते हुए मज़दूर वर्ग की तानाशाही स्थापित नहीं कर सकता, कि इसके लिए पहले से कायम राज्य मशीनरी को तोड़ना ज़रूरी है और ऐसा हथियारबंद ताक़त के दम पर ही किया जा सकता है। मज़दूर वर्ग की तानाशाही लागू करने संबंधी पेरिस कम्यून का कड़वा अनुभव भी था। कम्यून ने क़ैद किए गए पूँजीपतियों को छोड़ दिया और पेरिस से बाहर जाने दिया, जिन्होंने वर्साय पहुँचकर ताक़त इकट्ठा करके पेरिस पर हमला कर दिया। इस तरह बैंक ऑफ़ फ्रांस पर क़ब्ज़ा ना करके घातक ग़लती की। मार्क्स की सलाह थी कि पेरिस में प्रतिक्रांति की हर कोशिश को कुचल दिया जाए और वर्साय की तरफ़ कूच करके, वहाँ बैठी थियेर सरकार को ख़त्म किया जाए, वहाँ बैठे पेरिस के पूँजीपतियों की सारी प्रतिक्रांतिकारी साज़िशों को नाकाम किया जाए। पर ऐसा नहीं किया गया। पेरिस कम्यून का यह कड़वा अनुभव एक अहम सबक़ देता है कि मज़दूर वर्ग की तानाशाही को पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ चौतरफ़ा, निर्मम और सख़्त ढंग से लागू किया जाना चाहिए नहीं तो पूँजीवादी पुनर्स्थापना की ख़तरनाक संभावना बनी रहती है। समाजवादी सोवियत यूनियन और समाजवादी चीन में समाजवाद के निर्माण के दौरान चला वर्ग संघर्ष और पूँजीवादी पुनर्स्थापना भी इसकी पुष्टि करते हैं।

पेरिस कम्यून के इस सबक़, मार्क्सवाद की इस शिक्षा पर, हमेशा हमले किए जाते रहे हैं, जो आज भी जारी है। भारत में भाकपा, माकपा, भाकपा (एम.एल.-लिबरेशन), आर.एम.पी.आई. जैसी संशोधनवादी यानी नक़ली कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा यह कुकर्म किया जाता रहा है और किया जा रहा है। संशोधनवादियों द्वारा मज़दूर संघर्षों के इतिहास के सबक़ों पर मिट्टी डालने, बदनाम करने, मज़दूर वर्ग में भ्रम पैदा करने के ख़िलाफ़ कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को लगातार संघर्ष करने की ज़रूरत है।

पेरिस कम्यून के नेतृत्व में अराजकतावादी, ब्लांकीवादी और प्रूदोंवादी हावी थे। इनके पास ना तो मज़दूर वर्ग को नेतृत्व देने का अनुभव था और ना ही इन्होंने मार्क्सवाद को समझा था, बल्कि अनेक तो मार्क्सवाद के सचेत विरोधी थे। अंतरराष्ट्रीय के फ्रांसीसी हिस्से में मार्क्सवादी विचारधारा का असर बहुत कम था। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र', 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'पूँजी' जैसी बेहद महत्वपूर्ण किताबें भी फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद नहीं हुई थीं। मज़दूरों द्वारा आगे धकेल दिए जाने के कारण ब्लांकीवादी और प्रूदोंवादी नेताओं को कुछ चीज़ों को सही ढंग से अंजाम देना पड़ा। लेकिन सही समझदारी ना होने के कारण कई गंभीर ग़लतियाँ भी कीं। पेरिस कम्यून की इन सीमाओं, कमियों-कमजोरियों ने दुनिया के मज़दूर वर्ग को कम्युनिस्ट पार्टी के लाजिमी तौर पर निर्माण करने का सबक़ दिया।

***

आज पेरिस कम्यून से 153 साल बाद, दुनिया के कोने-कोने मे पूँजीवाद का फैलाव हो चुका है। साम्राज्यवादी, विकसित और पिछड़े देशों के पूँजीपति वर्ग द्वारा आज पहले के किसी समय से ज़्यादा लूट-शोषण-उत्पीड़न का तांडव रचा जा रहा है। दुनिया के कोने-कोने में इसके ख़िलाफ़ आक्रोश है, बदलाव की तीखी चाहत है। कहीं बड़े, कहीं छोटे स्तर पर मज़दूर पूँजी की खूँखार ताक़तों से विभिन्न रूपों में टक्कर ले रहे हैं। मज़दूर वर्ग की आत्मगत ताक़तें, कम्युनिस्ट क्रांतिकारी पार्टियाँ/ग्रुप, चाहे कमज़ोर हैं लेकिन पूरी दुनिया में सक्रिय हैं और मज़दूर वर्ग को संगठित करने और सही दिशा देने की कोशिश में जी-जान से लगे हुए हैं। विश्व मज़दूर वर्ग के पास बीते मज़दूर संघर्षों-क्रांतियों के अनुभवों-सबक़ों का आज पहले से किसी भी समय से अमीर ख़ज़ाना है। बीते समय में पेरिस कम्यून की शिक्षाओं पर चलते हुए मज़दूर वर्ग ने और ऊँचे स्तर के प्रयोग किए, पूँजीपति वर्ग के अनेकों क़िलों की दीवारें गिराने में सफलता हासिल की, और सबक़ हासिल किए। पर मज़दूर वर्ग का तजुर्बा नाकाफ़ी था जिसके कारण पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोका नहीं जा सका। लेकिन आज जब हमारे पास मज़दूर संघर्षों का महान इतिहास है, हमारे पास पेरिस कम्यून, रूस के मज़दूरों की क्रांति और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के रूप में तीन मील के पत्थरों के महान तुजुर्बे और सबक़ हैं। इसमें कोई शक नहीं कि मज़दूर वर्ग आने वाले समय में पूँजी के क़िलों को नष्ट करने के लिए ऐसा हमला शुरू करेगा, ऐसे महान अनुभव और उपलब्धियाँ प्राप्त करेगा जो इतिहास में कभी नहीं देखे गए। इसके साथ ही यह कहना भी बिल्कुल भी अतिकथनी नहीं है कि क्रांति के विज्ञान, समाजवादी समाज के निर्माण और लगातार कम्युनिज़्म की तरफ़ बढ़ते जाने से संबंधित आज विश्व मज़दूर के पास पेरिस कम्यून समेत गुज़रे समय के अनुभवों-सबक़ों के हथियारों का जो शानदार भंडार है, उसे इस्तेमाल करते हुए मज़दूर वर्ग आने वाले समय में जो नए समाजवादी समाजों का निर्माण करेगा, उन्हें पीछे धकेलना संभव नहीं रह जाएगा।

पेरिस कम्यून को ख़ून के महासागर में डुबोकर पूँजीवाद ने पेरिस ही नहीं, बल्कि दुनिया-भर के मज़दूरों को सबक़ सिखाने की कोशिश की। पर मज़दूर वर्ग ने हथियार फेंकने की बजाए अपने शास्त्रागार को और भी ज़्यादा समग्र बनाकर पेरिस कम्यून के शहीदों को अमर कर दिया। कम्यूनार्ड योजिन पोतिये के लिखे, पेरिस कम्यून के महान संग्राम से निकले लहू-सने शब्दों को विश्व मज़दूर वर्ग ने अपना अंतरराष्ट्रीय गीत बना लिया, जो भले ही दुनिया की अलग-अलग राष्ट्रीयताओं के मज़दूर अलग-अलग भाषा में गाते हैं, लेकिन एक ही धुन में गाया जाने वाला 'इंटरनेशनल' गीत, जहाँ विश्व-भर के पूँजीपतियों को कँपकँपी चढ़ा देता है, वहीं विश्व मज़दूर वर्ग के हौसले और जोश को और ज़्यादा बढ़ा देता है –

उठ जाग ओ भूखे बंदी
अब खींचो लाल तलवार
कब तक सहोगे भाई ज़ालिम का अत्याचार
तुम्हारे रक्त से रंजित क्रंदन
अब दसों दिशा लाल रंग
सौ–सौ बरस के बंधन एक साथ करेंगे भंग
ये अंतिम जंग है इसको जीतेंगे हम एक साथ
गाओ इंटरनेशनल भव स्वतंत्रता का गान।

– लखविंदर

भारत में बेरोज़गारी की भयानक हालत: कुल बेरोज़गारों में 83 फ़ीसदी नौजवान

'अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन' ने 'मानव विकास संस्थान' के सहयोग से 'भारत रोज़गार रिपोर्ट-2024' जारी की है। इस रिपोर्ट में बेरोज़गारी के संबंध में और ख़ासतौर पर नौजवानों में बेरोज़गारी के संबंध में जो तथ्य पेश किए हैं, वे एक बार फिर मोदी हुकूमत द्वारा 2 करोड़ रोज़गार हर साल पैदा करने के झूठे वायदों को नंगा कर रहे हैं।

भारत में बेरोज़गारी इस समय 45 सालों में सबसे अधिक है। इस ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक़, भारत के कुल बेरोज़गारों में 83 फ़ीसदी नौजवान हैं। हर साल भारत के श्रम बाज़ार में 70 से 80 लाख नौजवान शामिल होते हैं। अगर बेरोज़गारी दर की बात करें तो साल 2000 में नौजवानों में बेरोज़गारी दर 5.7% थी, जो साल 2022 में 12.1% हो गई। इसने साल 2019 में 17.5% के शिखर को भी छुआ। अगर पढ़े-लिखे नौजवानों की बात करें, तो 12वीं या इससे ऊपर की शिक्षा प्राप्त नौजवानों में बेरोज़गारी की दर सबसे अधिक है। साल 2000 में पढ़े-लिखे (12वीं से ऊपर) नौजवानों में बेरोज़गारी दर 35.7% थी, जो 2022 में बढ़कर 65.7% हो गई।

ना केवल उपरोक्त रिपोर्ट बल्कि समय-समय पर राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा सरकारी संस्थानों के लिए निकाले जाने वाले पदों के लिए भरे जाने वाले फ़ार्मों की गिनती से ही भारत में नौजवानों और ख़ास करके पढ़े-लिखे नौजवानों में बेरोज़गारी की भयंकर हालत का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। कुछ हज़ार पदों के लिए लाखों नौजवानों द्वारा फ़ार्म भरे जाते हैं। अक्सर नौजवानों की योग्यता इन पदों के लिए ज़रूरी योग्यता से अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर जनवरी 2024 में उत्तर प्रदेश में चपरासी के 60 पदों के लिए 93,000 नौजवानों ने फ़ार्म भरे, जिनमें 3700 पी.एच.डी., 5000 ग्रेजुएट, 28,000 पोस्ट-ग्रेजुएट थे। मोदी के गुजरात मॉडल की बात करें तो जून 2022 में केवल 3400 पदों के लिए 17 लाख पढ़े-लिखे डिग्रियाँ प्राप्त नौजवानों ने फ़ार्म भरे, जिसके लिए केवल दसवीं पास होने की योग्यता ज़रूरी थी।

भारत सरकार के संस्थानों में लगभग 24% पद ख़ाली पड़े हैं। ये वे पद हैं, जो केंद्र सरकार द्वारा पहले से ही मंज़ूर किए जा चुके हैं, लेकिन अभी तक भरे नहीं गए। बल्कि साल 2014 से ख़ाली पद लगातार बढ़ रहे हैं। 2014 में इन ख़ाली पड़े पदों की गिनती 4,21,658 (कुल का 11.57%) थी, जो 2018 में 6,83,823 (कुल का 17.5%) हो गई और 2022 में 9,83,028 हो गई। इसके अलावा अगर राज्य सरकारों के विभिन्न संस्थानों में ख़ाली पड़े पदों को जोड़ लिया जाए, तो सरकारी क्षेत्र में ख़ाली पड़े पदों की कुल गिनती 60 लाख से ऊपर पहुँच जाएगी। सार्वजनिक क्षेत्र को सही ढंग से चलाने के लिए नए पद जारी करने की बात तो दूर बल्कि उल्टा भारत और राज्य सरकारें पहले से ही ख़ाली पड़े पदों को भी नहीं भर रहीं। मोदी सरकार के पिछले 10 सालों के दौरान निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों को ज़ोर-शोर से लागू किया जा रहा है, लगातार सरकारी संस्थानों को तबाह किया जा रहा है

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

और इन्हें सस्ते दामों में पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है।

भारत की 141 करोड़ आबादी में से लगभग आधी आबादी की उम्र 25 साल से कम है और लगभग दो-तिहाई की उम्र 35 साल से कम है। भारत की आबादी के इतने बड़े हिस्से का नौजवान होने का अर्थ है कि भारत नौजवानों का देश है। नौजवानी जिसे ऊर्जा का अथाह स्रोत समझा जाता है। जैसेकि हिंदी के प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध ने अपने लेख 'नौजवान का रास्ता' में लिखा है कि, "अगर नौजवानी की ताक़त को, ज्ञान और बुद्धि तथा कर्म निश्चय की बिजली में रूपांतरित करते हुए, देश-निर्माण यानी मानव-निर्माण की ऊँची-से-ऊँची मंज़िल तक पहुँचाया जा सकता है, बंजर परती ज़िंदगी में इश्क़ और इंक़लाब की रूहानियत की फ़सल खड़ी की जा सकती है।" लेकिन भारत की हक़ीक़त यह है कि यहाँ नौजवान रोज़गार के लिए दर-दर भटक रहे हैं। अगर मुक्तिबोध के शब्दों में कहना हो, तो मौजूदा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के पास वह बिजलीघर नहीं है, जिसके द्वारा नौजवानों की इस ऊर्जा को मानवता के निर्माण में लगाया जा सके।

हर साल 2 करोड़ नौकरियाँ देने का वादा करने वाली मोदी सरकार अब पूरी बेशर्मी से कह रही है कि बेरोज़गारी का हल सरकार नहीं कर सकती। भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार वी. अनंत नागेश्वरन ने बेरोज़गारी के संबंध में उपरोक्त रिपोर्ट के जवाब में कहा कि, "सरकार यह बात कर सकती है कि बेरोज़गारी की समस्या है, लेकिन इसका हल नहीं कर सकती। इसके हल के लिए निजी क्षेत्र को और ज़्यादा रोज़गार मुहैया करवाना चाहिए।" यानी मोदी सरकार का साफ़ कहना है कि वह नागरिकों को ना तो स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएँ दे सकती है और ना ही योग्यता के मुताबिक़ स्थाई रोज़गार। सरकार जो कर सकती है और कर रही है, वह है देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेरोज़गारों की अनगिनत फ़ौज की कम से कम तनख़्वाहों पर भयंकर लूट करने, इस नौजवानी को मुनाफ़े के लिए निचोड़ने और फिर दूध में से मक्खी की तरह बाहर फेंक देने के लिए खुला हाथ देना।

लेकिन जैसे कि मुक्तिबोध ने कहा था, "जो समाज और जो राज्य नौजवानों को सतत उन्नतिशील पेशा नहीं दे सकता, वह राज्य और वह समाज टिक नहीं सकता। इतिहास के विशाल हाथ इस वक़्त उसकी क़ब्र खोदने के लिए बड़ा भारी गड्ढा तैयार कर रहे हैं।"

– तज़िंदर

23 मार्च के शहीदों की याद में अलग-अलग जगहों पर कार्यक्रम

23 मार्च के महान शहीदों – भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत को याद करते हुए जनसंगठनों द्वारा मुहिम चलाई गई और कार्यक्रम आयोजित किए गए। शहीदों के विचारों की मौजूदा समय में ज़रूरत, आज के जनविरोधी पूँजीवादी निज़ाम के मुक़ाबले शहीदों के सपनों के लूट रहित समाज का निर्माण करने की ज़रूरत को उभारा गया। वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह को आजकल रस्मी तौर पर हार चढ़ाकर खानापूर्ति कर दी जाती है। उसकी लड़ाई केवल अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ ना होकर कुल आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध थी, जो मेहनतकशों की लूट पर टिका हुआ है। आज़ादी के बाद भी मेहनतकशों के हाथ ग़रीबी, भुखमरी, अन्याय में जकड़े हुए हैं। मौजूदा हालात दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होते जा रहे हैं। अमीरी-ग़रीबी का अंतर दिन-प्रतिदिन और बड़ा होता जा रहा है। लूट, दमन, अन्याय का बोझ बढ़ रहा है। सांप्रदायिक फ़ाशीवादी लहर का ख़तरा और बड़ा हो रहा है। ऐसे समय में भगतसिंह के विचार पहले से अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। आज के मज़दूरों, मेहनतकशों, नौजवानों, विद्यार्थियों को भगतसिंह और उसके अन्य साथियों द्वारा दिखाई राह पर चलकर समाज को बदलने में जुट जाना चाहिए।

चंडीगढ़ में 23 मार्च को नौजवान भारत सभा और कारख़ाना मज़दूर यूनियन द्वारा हल्लोमाजरा में 'इंक़लाबी शाम' कार्यक्रम किया गया। कार्यक्रम से पहले हल्लोमाजरा और मौलीजागराँ बस्ती में 10 दिनों तक प्रचार मुहिम चलाई गई थी। जिसके तहत पर्चा लेकर नुक्कड़ सभाएँ, घर-घर प्रचार, फ़िल्म शो, विचार चर्चाएँ आयोजित की गईं। इस मौक़े पर नुक्कड़ नाटक 'बुत जाग पिआ', इंक़लाबी कविताएँ और गीत पेश किए गए और आख़िर में इलाक़े में मशाल मार्च निकालकर कार्यक्रम की समाप्ति की गई।

17 मार्च को लुधियाणा की ई.डब्ल्यू. एस. कालोनी में मज़दूर-नौजवान संगठनों द्वारा 23 मार्च के शहीदों को समर्पित शहीदी दिवस समागम किया गया। इस मौक़े पर वक्ताओं द्वारा शहीदों के जीवन और आज के समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता के बारे में बात की गई। नौजवान भारत सभा के साथियों द्वारा 'गड्ढा' नाटक और इंक़लाबी गीत पेश किए गए। इस मौक़े पर इंक़लाबी-प्रगतिशील साहित्य की नुमाइश भी लगाई गई।

24 मार्च को पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल) द्वारा गाँव भूँदड़ी में शहीद भगतसिंह यादगारी पुस्तकालय में शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों की मौजूदा समय में प्रासंगिकता पर विचार-चर्चा का आयोजन किया गया।

नौजवान भारत सभा द्वारा 23 मार्च को हरियाणा के सिरसा ज़िले के 10 गाँवों में मोटरसाइकिल मार्च निकाला गया। गाँव नाकोड़ा से शुरू करते हुए मोटरसाइकिलों का क़ाफ़िला संतावाली, जीवन नगर, सुतंतर नगर, संत नगर, हरीपुरा, जगजीत नगर, दमदमा, संतोखपुरा, धर्मपुरा गाँवों में से होकर निकला। गाँवों में पर्चा बाँटते हुए, गाँव नाकोड़ा, जीवन नगर, हरिपुरा और धर्मपुरा में सभाएँ की गईं और भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों और उद्देश्य के बारे में लोगों से बातचीत की गई। गाँव संतोखपुरा, धर्मपुर द्वारा क़ाफ़िले का तहेदिल से स्वागत किया गया। आख़िर में धर्मपुरा में शहीद भगतसिंह चौक में जनसभा की गई।

नौजवान भारत सभा द्वारा मंडी गोविंदगढ़ में 31 मार्च को फ़िल्म शो और विचार चर्चा का आयोजन किया गया। गौहर रज़ा की दस्तावेज़ी फ़िल्म 'इंक़लाब' दिखाई गई। लुधियाणा ज़िले के पखोवाल गाँव में भी 23 मार्च के शहीदों के विचारों की मौजूदा समय में प्रासंगिकता के बारे में विचार चर्चा का आयोजन किया गया।

20 मार्च को पंजाब स्टूडेंट्स यूनियन (ललकार) द्वारा पंजाबी यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ में 'भगतसिंह का नौजवानों को संदेश' विषय पर सेमिनार करवाया गया। बठिंडा में राजेंद्रा कॉलेज और सरकारी आई.टी.आई. में गौहर रज़ा की दस्तावेज़ी फ़िल्म 'इंक़लाब' दिखाई गई। 21 मार्च को गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर में मशाल मार्च और इंक़लाबी सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। पंजाबी यूनिवर्सिटी (पटियाला) में विद्यार्थी संगठन पीएसयू (ललकार), एस.एफ़. आई., पी.आर.एस.यू., ए.आई.एस.एफ़., पी.एस.एफ़. और पी.एस.यू. द्वारा 23 मार्च के शहीदों को समर्पित मार्च निकाला गया।

– संवाददाता

सिरसा

चंडीगढ़

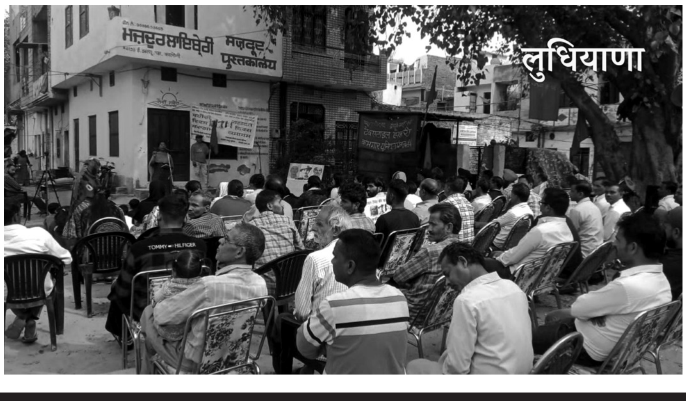
लुधियाणा

भूँदड़ी

निजी अस्पतालों में ग़ैर-ज़रूरी सिजेरियन डिलीवरी का काला बाज़ार

लेबर वार्ड के बिस्तर पर पड़ी नीलम को डॉक्टर ने कहा है कि सब कुछ बढ़िया चल रहा है और आज रात 10 बजे तक तेरा बच्चा इस दुनिया में क़दम रखेगा। बीते नौ महीनों से गर्भ में अपने बच्चे को सँभाले हुई नीलम को अब इसी घड़ी का इंतज़ार है। पर थोड़े समय बाद डॉक्टर नीलम के पास आती है और कहती है – “तुम्हारे बच्चे की जान खतरे में है और समय बहुत कम है। ऑपरेशन करना पड़ेगा, नहीं तो बच्चा मर भी सकता है”। नीलम ऐसा कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं थी। थोड़ी देर पहले नीलम का खिलखिलाता चेहरा अब भय की मूरत बन गया है। बीते महीनों में उसने डॉक्टर के कहे अनुसार अपनी देख-रेख में कोई कमी नहीं रखी थी, वह हक्की-बक्की हुई डॉक्टर की इस बात का कारण नहीं समझ पा रही थी।

यह डरावनी घटना अकेली नीलम की कहानी नहीं, बल्कि आज भारत में हर रोज़ 23000 के करीब औरतों के साथ यही हो रहा है। सिजेरियन ऑपरेशन द्वारा बच्चों को जन्म देने की पीड़ा को महसूस करना इसे ठीक ढंग से जाने बिना संभव नहीं है। पहली बार सुनने में लग सकता है कि यह एक आम सर्जरी की तरह ही है, जो हर रोज़ होती ही रहती है। पर बात तब विशेष चर्चा का विषय बन जाती है, जब हमें यह पता लगता है कि यह बहुत ग़ैर-ज़रूरी है और आज अंधा पैसा कमाने का एक ज़रिया बन चुका है।

सिजेरियन या सी-सेक्शन डिलीवरी क्या है?

जब से मनुष्यता ने आधुनिक युग में क़दम रखा है, तब से लेकर आज तक के तकनीकी विकास से इंसान के लिए दुनिया की किसी भी बड़ी बीमारी या शारीरिक परेशानियों से लड़ना कोई बड़ी बात नहीं है। विज्ञान के इसी विकास की देन है यह तकनीक – सी-सेक्शन डिलीवरी। आमतौर पर एक सेहतमंद माँ अपने बच्चे को बिना किसी विशेष डॉक्टरी मदद के जन्म देती है जिसे योनि-प्रसव, क़ुदरती या नॉर्मल डिलीवरी भी कहा जाता है, पर कुछ हालतों में ऐसा भी होता है जब शारीरिक कमजोरी, ख़ून की कमी, इंफ़ेक्शन के बढ़ने या हादसों में जख्मी होने के कारण बच्चे को क़ुदरती तौर से जन्म देने के लिए माँ सक्षम नहीं होती। ऐसी हालत में सी-सेक्शन डिलीवरी की जाती है, जिसमें बच्चेदानी के ऊपरी चमड़ी समेत सात अलग-अलग परतों को चीरकर बच्चे को बाहर निकाला जाता है। यह बात सुनने में जितनी पीड़ादायी है, असल में इससे कई गुणा दर्दनाक है। लेकिन जहाँ ऊपर बताए गए कारणों से तकनीक की कमी के कारण सच में कितनी ही औरतों और बच्चों की मौत हो जाती थी, वहाँ यह तकनीक विज्ञान का एक तोहफ़ा साबित होती है। पर सवाल यह है कि आज इस तकनीक का इस्तेमाल इंसानी भलाई के लिए किस हद तक किया जा रहा है?

आज भारत में हर रोज़ करीब 23000 बच्चे सिजेरियन के द्वारा पैदा होते हैं। अगर हम इस गिनती को सरकारी अस्पतालों और निजी अस्पताल में हुई डिलीवरियों में बाँट दें तो सरकारी अस्पतालों में होने वाली कुल डिलीवरियों में सिजेरियन डिलीवरी 14% है, वहीं निजी अस्पतालों में यह गिनती 54 से 60% तक है, यानी निजी अस्पताल में होने वाले हर 100 डिलीवरियों में से लगभग 60 डिलीवरियाँ सिजेरियन द्वारा की जा रही हैं।

राज्य विशेष आँकड़ों के मुताबिक़ पंजाब के सरकारी और निजी अस्पतालों में यह अनुपात क्रमवार 34% और 51% है। तेलंगाना के निजी अस्पतालों में हर 100 में से 89 बच्चे सिजेरियन द्वारा पैदा हो रहे हैं और बिहार के सरकारी और निजी अस्पतालों में क्रमवार यह गिनती 6% सरकारी अस्पतालों में और 48.8% निजी अस्पतालों में होते हैं।

ऊपर दिए गए आँकड़ों से यह बात साफ़ है कि निजी अस्पतालों में सिजेरियन द्वारा होने वाली डिलीवरियाँ सरकारी अस्पतालों के मुक़ाबले करीब चार गुना ज़्यादा है। कई राज्यों में तो यह अनुपात 5 से 6 गुना तक हैं, पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि सरकारी अस्पतालों की स्थिति बहुत अच्छी है। यहाँ अन्य कारणों से होने वाले ऑपरेशनों को भी टाला जाता है, जिसे लेकर सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था आज निंदनीय स्थिति में है, जिस पर विस्तार से चर्चा की ज़रूरत है।

निजी अस्पतालों में बढ़ते सिजेरियन के मामलों का कारण है, इससे होने वाली अपार कमाई। ख़र्चे के नज़रिए से क़ुदरती ढंग से जन्म देने के मुक़ाबले माँ के परिवार को सिजेरियन से जन्म देने में लगभग 8 से 10 गुना तक ज़्यादा ख़र्च करना पड़ता है। भारत में सिजेरियन आपरेशनों के लिए अस्पताल में दाख़िल होने से लेकर छुट्टी मिलने तक आमतौर पर 30 से 50 हज़ार का ख़र्चा आ जाता है। ज़्यादा महँगे अस्पतालों में तो यह ख़र्चा और भी बढ़ जाता है और यहाँ तक कि लाखों तक भी पहुँच जाता है। एक तो ग़ैर-ज़रूरी तौर पर ऑपरेशन किए जाते हैं, साथ ही ग़ैर-ज़रूरी तौर पर दाख़िल रखकर भी लोगों की जेबों पर डाका मारने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार “डॉक्टरी सेवा” के नाम पर डकैती की जा रही है।

यही क़ीमत एक सरकारी अस्पताल में भले ही कम है, मगर इन अस्पतालों की स्थिति किसी रिफ़्यूजी कैंप से भी कहीं बदतर है, जहाँ बेड की कमी के कारण एक बेड पर दो-दो मरीजों को रहना पड़ता है। इसके अलावा अन्य सुविधाओं और स्टाफ़ की कमी के कारण स्थिति और गंभीर होती है।

इससे एक और बात साफ़ जाहिर होती है कि लगभग आधे से ज़्यादा ऑपरेशन ग़ैर-ज़रूरी होते हैं, जहाँ इन मामलों में माँ बच्चे को एक क़ुदरती और सुरक्षित तरीक़े से जन्म दे सकती हैं, मगर फिर भी सेहतमंद महिलाओं को इस प्रक्रिया के लिए राजी करने के लिए अस्पताल में काफ़ी नाटक खेला जाता है। यहाँ अस्पताल में दाख़िल किसी गर्भवती महिला की डिलीवरी के कुछ घंटे पहले एक सिलसिलेवार ढंग से ऐसा माहौल बनाया जाता है, जिससे वह और उसका परिवार इसके लिए मान जाए। आइए नीलम की कहानी से लेबर रूम में चलते इस ड्रामे को समझने की कोशिश करते हैं –

नीलम के बच्चे के जन्म होने में अभी लगभग 5 से 6 दिन का समय बाक़ी है, मगर डॉक्टर उसे कहती है, “आज रात 10 बजे के करीब तुम्हारा बच्चा इस दुनिया में क़दम रखेगा, सब कुछ बढ़िया चल रहा है”। रात का समय बीत जाता है, लेकिन नीलम की डिलीवरी नहीं होती। कुछ समय बाद डॉक्टर फिर से आती है और कहती है कि “तुम्हारे बच्चे की जान खतरे में है और समय बहुत कम है, ऑपरेशन करना पड़ेगा नहीं तो बच्चा मर भी सकता है”। इसके लिए वह यह बहाना देती है कि तुम्हारे बच्चे की धड़कन ठीक ढंग से नहीं चल रही (इसके अलावा दूसरे झूठे कारण भी दिए जाते हैं, जैसे गले में प्लेसेंटा फँस गया है, पोजीशन बिगड़ गया है, आदि)। इसी दौरान नीलम को “पिटोसिन” नाम का एक इंजेक्शन लगाया जाता है। यह इंजेक्शन बहुत ही गंभीर स्थिति में लगाया जाता है, जो एक उत्प्रेरक का काम करती है, यह बच्चेदानी की मांसपेशियों को सिकुड़ने पर मजबूर करती है, जिससे एक नावाजिब प्रसव पीड़ा शुरू हो जाती है, जो एक क़ुदरती प्रसव पीड़ा से कई गुना ज़्यादा दर्दनाक होती है। क़ानूनी तौर पर इस इंजेक्शन के लिए माँ-बाप के हस्ताक्षर की ज़रूरत होती है, जिसके लिए डॉक्टर एक नया नाटक करते हैं। वह फिर से ज़िंदगी और मौत का हवाला देकर माँ-बाप को राजी कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में अक्सर ही माँ-बाप डॉक्टर पर भरोसा कर यह सोचते हैं कि डॉक्टर ने कहा है तो सही ही कहा होगा। मगर उनके इसी भरोसे का फ़ायदा उठाया जाता है। इसके बाद इस नाटक का अंत हो जाता है और ऑपरेशन थिएटर अपनी तैयारी में जुट जाते हैं। यहाँ से नीलम के परिवार के लिए अगले कुछ घंटो तक जारी रहने वाली बड़े ख़र्चों की लड़ी शुरू हो जाती है।

नीलम की कहानी में उन्नीस-बीस का फ़र्क़ जोड़ दें, तो यह आज लगभग हर रोज़ 23000 औरतों के साथ हो रहा है। सिजेरियन के बाद 90% माएँ अपने अगले बच्चों को भी नॉर्मल डिलीवरी से जन्म नहीं दे पाती। ऑपरेशन के बाद शरीर में भारी ख़ून की कमी होती है, जिसे ग़रीबी के कारण ज़्यादातर औरतें पूरा नहीं कर पाती। इसके अलावा गंभीर देखभाल की ज़रूरत होती है, जिसका ख़र्चा उठाना एक और विपदा है। गाँव-घरों में जहाँ सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था की भारी कमी है, जहाँ औरतों को डिलीवरी के लिए दूर शहर के चक्कर काटने पड़ते हैं, वहाँ वह अक्सर निजी अस्पतालों के इस नाटक और गोरखधंधे फँसकर रह जाती हैं।

मगर यह कहानी सिर्फ़ लेबर रूम पर ही ख़त्म नहीं हो जाती। आज पूरी दुनिया में जगह -जगह निजी अस्पतालों का एक जाल है। कैंसर जैसी बड़ी बीमारियों के इलाज के लिए कोई आम आदमी सरकारी अस्पतालों से उम्मीद नहीं कर सकता। जहाँ देश की अच्छी स्वास्थ्य व्यवस्था का बखान करने वाले नेता ख़ुद अपने इलाज के लिए विदेशों में शरण लेते है, वहाँ आम लोगों के लिए क्या उम्मीद हो सकती है। मगर आज स्वास्थ्य व्यवस्था के बाज़ार बन जाने के लिए कौन ज़िम्मेदार है? आज हम एक ऐसे समाज में जी रहे है, जहाँ किसी भी चीज़ का उत्पादन मुनाफ़ा कमाने के लिए होता है। उसी तरह विज्ञान की हर बेहतरीन खोज भी मुनाफ़ाखोरों के हत्थे चढ़कर मुनाफ़ा कमाने का एक औज़ार-भर रह जाती है। इसलिए यह तब तक ख़त्म नहीं हो सकता, जब तक इस मुनाफ़े के लिए काम करती व्यवस्था की जगह हम ऐसा समाज नहीं बना लेते, जहाँ विज्ञान और उत्पादन लोगों की ज़रूरतों को पूरा करे और जहाँ तमाम सुविधाएँ सभी की पहुँच में हों।

– अंकित

झूठी ख़बरें फैलाने के मामले में विश्व स्तर पर भारत पहले नंबर पर

पिछले दिनों झूठी ख़बरों के सर्वेक्षण पर आधारित रिपोर्ट में झूठी ख़बरें फैलाने वाले विश्व के अग्रणी देशों की एक सूची जारी की गई। इस सूची में भारत पहले नंबर पर आया है। ग़ौरतलब है कि इन झूठी ख़बरों में बड़ा हिस्सा भाजपा आई.टी. सेल द्वारा योजनाबद्ध ढंग से फैलाई जाने वाली झूठी ख़बरों का है।

गुज़री 16 जनवरी को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद ज़िले में गौ-हत्या का एक मामला सामने आया। पुलिस के पास बजरंग दल के ज़िला प्रधान ने रिपोर्ट दर्ज करवाई और दावा किया कि मुसलमानों ने 'कांबड़ पथ' (मुरादाबाद) में गौ-हत्या की है। भाजपा आई.टी. सेल द्वारा पूरे इलाक़े में मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत का माहौल बनाया गया। सोशल मीडिया के ज़रिए लोगों को ख़ूब भड़काया गया। लेकिन पुलिस जाँच में पता चला कि गौ-हत्या इन बजरंग दल वालों ने ही की थी। पकड़े गए तीन दोषी बजरंग दल से संबंधित थे। इनका मुख्य मक़सद लोकसभा चुनाव 2024 से पहले सांप्रदायिक माहौल भड़काना था। मुरादाबाद वाला मामला तो एक छोटी-सी ताज़ा मिसाल है।

इस प्रकार के कितने ही मामले रोज़ाना सामने आते हैं। उससे भी अधिक मामले दबा लिए जाते हैं। लेकिन नफ़रत फैलाने वाले ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ कार्यवाही तो दूर की बात है, बल्कि भाजपा हुकूमत बड़ी ही बेशर्मी से झूठी ख़बरें फैलाने वाले ऐसे असामाजिक तत्वों को पार्टी पदों पर बिठाती है। थोड़े दिन पहले ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े तीन गुंडों पर बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी–आई.आई.टी. की 20 साल की महिला विद्यार्थी से बलात्कार करने के दोष लगे थे। इन बलात्कारियों को भाजपा ने आई.टी. सेल में बड़े पद दिए हुए थे।

भाजपा के इस आई.टी. सेल की करतूतों की सूची बड़ी लंबी है। जनविरोधी कृषि क़ानूनों के विरुद्ध चले किसानी संघर्ष के समय भाजपा के आई.टी. सेल ने किसानों और पंजाब की जनता पर अलगाववादी, आतंकवादी, देशद्रोही आदि के इल्ज़ाम लगाकर बहुत झूठा प्रचार किया था। पिछले साल कुश्ती संघ के अध्यक्ष बृजभूषण के ख़िलाफ़ पहलवान खिलाड़ियों द्वारा छेड़छाड़ और शारीरिक शोषण के गंभीर दोष लगे थे। लेकिन भाजपा आई.टी. सेल द्वारा पीड़ित संघर्षशील खिलाड़ियों को ही काफ़ी बदनाम किया गया और खुलेआम कुश्ती संघ के प्रधान, गुंडे बृजभूषण के बचाव में अनेकों पोस्टें डाली गईं और इन्हें बड़े स्तर पर घुमाया गया। इसी प्रकार जनवरी 2023 में हिंडनबर्ग रिपोर्ट में अदाणी की कालाबाज़ारी के बारे में खुलासे हुए, तो भाजपा आई.टी. सेल द्वारा अपने चहेते अदाणी को बचाने के लिए यह प्रचार किया गया कि यह देश के ख़िलाफ़ विदेशियों की साजिश है।

यानी झूठी ख़बरें फैलाने का काम भारत में बड़े ही योजनाबद्ध ढंग से किया जा रहा है। पिछले सालों में हमने लगातार देखा कि कैसे आर.एस.एस-भाजपा के आई.टी. सेल ने अपना सांप्रदायिक एजेंडा आगे बढ़ाने के लिए झूठी ख़बरों का सहारा लिया, जो आगे व्हाट्सएप और अन्य सोशल मीडिया संस्थानों द्वारा लाखों, करोड़ों लोगों तक पहुँचीं। इन झूठी ख़बरों को मुख्य तौर पर मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने, विरोधी पार्टियों पर कीचड़ उछालने, मोदी हुकूमत के ख़िलाफ़ चलने वाले संघर्षों को बदनाम करने और सामाजिक कार्यकर्ताओं की छवि बिगाड़ने के लिए एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

भाजपा-संघ का यह झूठा प्रचार नमो ऐप, व्हाट्सएप, फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम आदि माध्यमों के ज़रिए करोड़ों लोगों तक पहुँचाया जाता है। नमो ऐप को एक करोड़ से भी अधिक लोग इस्तेमाल करते हैं। इस पर हर रोज़ झूठी ख़बरों की बाढ़ आई रहती है। जनता में सांप्रदायिक या अंधविश्वास से भरी ख़बरें पहुँचाई जाती हैं।

अपने इसी बड़े ताने-बाने को भाजपा आई.टी. सेल चुनाव के समय भी बहुत ज़ोर-शोर से इस्तेमाल करता है। विश्व आर्थिक मंच की एक रिपोर्ट के मुताबिक़, भारत में 2019 के चुनाव में लगभग 80 फ़ीसदी वोटर किसी ना किसी हद तक झूठी ख़बरों के शिकार थे। और अब 2024 के चुनाव से पहले भी ऐसी झूठी ख़बरें फैलाने का सिलसिला बहुत बढ़ गया है। "व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी" के ज़रिए देश के नौजवानों को कहा जा रहा है कि 2024 के चुनाव में "मोदी लाओ, राम राज्य में योगदान पाओ"। संघी हुक्मरानों द्वारा झूठी ख़बरों के इस शोर में शिक्षा, रोज़गार, महँगाई, निजीकरण, संकुचित हो रहे जनवादी अधिकार, पत्रकारों और कार्यकर्ताओं पर हो रहे हमले आदि जनता के कितने ही मसलों को पूरी तरह से दबाने की ज़बरदस्त कोशिश की जा रही है। सोशल मीडिया पर विरोधी दलों की पोस्टों की पहुँच कम कर दी जाती है, ख़ासकर उन पोस्टों की जो भाजपा हुकूमत के झूठ को नंगा करती हैं। मोदी सरकार विरोधी बड़ी संख्या में सोशल मीडिया खाते अब तक बंद किए जा चुके हैं। एक और भाजपा हुकूमत देश में झूठ फैला रही है, दूसरी ओर इन झूठी ख़बरों का पर्दाफ़ाश करने वाले जनपक्षधर पत्रकारों पर झूठे केस दर्ज किए जा रहे हैं। ख़ासतौर पर भाजपा-आर.एस.एस द्वारा फैलाई जाने वाली झूठी ख़बरों का पर्दाफ़ाश करने वाले 'आल्ट न्यूज़' संस्थान के सह-संस्थापक मोहम्मद ज़ुबेर पर 2022 में किसी हिंदू शेर सेना नाम के संगठन से जुड़े सांप्रदायिक व्यक्ति द्वारा शिकायत करने पर 295-ए का केस दर्ज कर दिया गया और बाद में उस पर विदेशी फ़ंडिंग के दोष भी लगाए गए। विदेशी फ़ंडिंग के दोष लगाकर ही अक्टूबर 2023 में 'न्यूज़ क्लिक' संस्थान के संस्थापकों – प्रबीर पुरकायस्थ और अमित चक्रवर्ती पर यू.ए.पी.ए. जैसा दमनकारी क़ानून लगाकर उनका मुँह बंद करने की कोशिश की गई। ग़ौरतलब है कि न्यूज़ क्लिक संस्थान अलग-अलग समय मोदी सरकार की जनविरोधी नीतियों की आलोचना करता रहा है और कृषि क़ानूनों के विरुद्ध चले संघर्ष में भी इसने संघर्ष के पक्ष में पत्रकारिता की थी।

इसी प्रकार कश्मीर में जिस तरह 2019 में धारा 370 हटाने के बाद वहाँ पत्रकारों की ज़ुबानबंदी की गई है, वह किसी से छुपी नहीं। पिछले दिनों भाजपा द्वारा 22 जनवरी को किए राम मंदिर के उद्घाटन के पीछे छुपी सांप्रदायिक राजनीति पर टिप्पणी करने वाले पंजाब के पाँच लोगों पर भी धारा 295-ए के तहत केस दर्ज किए गए। विश्व का सबसे बड़े लोकतंत्र होने का दम भरने वाले भारत में जिस प्रकार योजनाबद्ध तरीक़े से मोदी सरकार द्वारा विरोधी पत्रकारों पर हमला बोला गया है, वह किसी से छुपा नहीं। यह अकारण ही नहीं कि साल 2023 की प्रेस आज़ादी सूचकांक रिपोर्ट में प्रेस आज़ादी के मामले में भारत का स्थान 180 देशों में 161वें नंबर पर गिर चुका था।

पूरे देश की आज यही हालत है। एक ओर तो सोशल मीडिया पर गोदी मीडिया का नेटवर्क दिन-रात जनता को आपस में लड़ाने के लिए झूठी ख़बरें प्रसारित कर रहा है और उस पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती, बल्कि सत्ता द्वारा उनकी पीठ थपथपाई जाती है; दूसरी ओर हक़, सच, इंसाफ़ के लिए उठने वाली हर आवाज़ को झूठे दोष लगाकर दबाया जा रहा है। इसके बावजूद जनता सरकारों की ऐसी जनविरोधी नीतियों का बड़े स्तर पर खुलकर विरोध करती नज़र आती है। लेकिन यह विरोध बिखरा हुआ है। आज जनता के इस बिखरे हुए विरोध को संगठित रूप देकर इन फ़ाशीवादी शक्तियों को हराने की ज़रूरत है।

– पुष्पिंदर

ऑटो उद्योग के मज़दूरों के हालात

कुछ महीने पहले एक 'क्रश्ड 2023' नाम की रिपोर्ट आई, जिसमें ऑटोमोबाइल क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों की ज़िंदगी और उनके साथ होने वाली दुर्घटनाओं के बारे में ज़िक्र किया गया। सड़कों पर लाल-पीली-नीली गाड़ियों और मोटर-साइकिलों को देखकर कभी भी उन्हें बनाने वाले मज़दूरों की ज़िंदगी के बारे में कोई नहीं सोच पता। महँगी गाड़ियाँ ख़रीदने वाले लोग शायद ही यह सोच पाते हों कि उस गाड़ी को बनाने वाले कितने ही मज़दूरों की उँगलियाँ कट जाती हैं और अंग नकारा हो जाते हैं।

भारत का ऑटोमोबाइल क्षेत्र इसके सबसे बड़े उद्योगों में शामिल है। इसी कारण से इस क्षेत्र को उद्योगों का उद्योग कहा जाता है। ऑटोमोबाइल क्षेत्र भारत के कुल घरेलू उत्पादन में 7.01% की हिस्सेदारी देता है और इस क्षेत्र के साथ लगभग 2 करोड़ मज़दूर जुड़े हुए हैं, जो संगठित और असंगठित रूप में काम कर रहे हैं। ऑटोमोबाइल क्षेत्र की मशहूर कंपनियों में होंडा, मारुति, हीरो, अशोक-लीलैंड, सुज़ुकी आदि शामिल हैं। भारत दुनिया में दो-पहिया और तीन-पहिया वाहन बनाने में दूसरे नंबर पर आता है और चौथे नंबर का सबसे ज़्यादा गाड़ियाँ-कारें बनाने वाला देश है। आइए ऑटोमोबाइल क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के हालतों पर एक नज़र डालें।

रिपोर्ट के अनुसार, ऑटोमोबाइल क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का बड़ा हिस्सा बिना छुट्टी के हफ़्ते में लगभग 6-7 दिन काम करते हैं। लगभग 80% मज़दूर हफ़्ते में 48 घंटे से ज़्यादा काम करते हैं। सिर्फ़ पाँच प्रतिशत मज़दूर ही ऐसे हैं, जो 48 घंटे से कम काम करते हैं और हैरानी की बात यह है कि 69% मज़दूर हफ़्ते में 60 घंटे या इससे भी ज़्यादा काम करते हैं।

कंपनियाँ मज़दूरों से 12-12 घंटे ओवरटाइम काम करवाती हैं। क़ानून के

(पन्ना 7 पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

मुताबिक़ अगर मज़दूर ओवरटाइम लगाता है तो उसका दुगना पैसा दिया जाएगा, लेकिन इन कंपनियों द्वारा मज़दूरों को ओवरटाइम काम करवाकर दुगने रेट पर पैसा नहीं दिया जाता। सरकार द्वारा इन कंपनियों पर कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं होती, क्योंकि इन बड़ी-बड़ी कंपनियों की सरकारों के साथ साँठ-गाँठ और श्रम विभाग आदि में पहुँच होने से इनका कुछ नहीं बिगड़ता। ऑटोमोबाइल क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों को क़ानून के मुताबिक़ तयशुदा तनख़्वाह भी नहीं दी जाती और कई मज़दूरों को तो तनख़्वाह की रसीद भी नहीं दी जाती, जिसके कारण वे सरकारी योजनाओं का फ़ायदा लेने से वंचित रह जाते हैं।

ऑटोमोबाइल क्षेत्र में बड़ी मशीनों पर काम करने वाले मज़दूरों के साथ हादसे बढ़ते जा रहे हैं। हेल्पर या सहायक मज़दूरों के साथ हादसे काफ़ी ज़्यादा होते हैं। असल में हादसों की मुख्य दोषी ये कंपनियाँ हैं, जो मज़दूरों की सुरक्षा के कोई प्रबंध नहीं करतीं। ऑटोमोबाइल क्षेत्र में बड़ी-बड़ी पावर प्रेस मशीनों पर काम होता है, जिन्हें चलाने के लिए कुशल मज़दूरों की ज़रूरत होती है। कुछ मज़दूरों को ज़्यादा तनख़्वाह देनी पड़ती है। इसलिए लागत घटाने और मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए कंपनियाँ कुशल मज़दूरों की जगह हेल्पर मज़दूरों को कम तनख़्वाह पर रखती हैं। ऐसे कारणों से कारख़ानों में होने वाले हादसे बढ़ते जा रहे हैं। अकुशल मज़दूरों के साथ हादसे सबसे ज़्यादा होते है। इन हादसों में उँगलियाँ कटना तो आम बात है। रिपोर्ट के मुताबिक़, लगभग 60 से 70% मज़दूरों ने अपने शरीर का कोई ना कोई अंग कारख़ाने में होने वाले इन हादसों में गँवाया है। 70% मज़दूर पावर-प्रेस मशीनों के कारण हादसों का शिकार हो जाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि पावर-प्रेस मशीनों पर काम करने वाले मज़दूरों को बुनियादी सुरक्षा उपकरण भी मुहैया नहीं करवाए जाते। कई मशीनों में भार और रफ़्तार कंट्रोल करने के लिए सेंसर लगे होते हैं, लेकिन ज़्यादा भार उठाने और ज़्यादा देर तक चलाने के लालच में मुनाफ़ाखोर कंपनियाँ इन सेंसरों को निकाल देती हैं, जिसके कारण गंभीर हादसे अक्सर ही होते रहते हैं। हादसों की सूरत में अक्सर कंपनी मालिकों द्वारा मुआवज़ा तो दूर की बात है, बल्कि ठीक से इलाज भी नहीं करवाया जाता। मज़दूरों को अपनी जेब से ही सारा ख़र्चा करना पड़ता है। इलाज में उनकी बचत का बड़ा हिस्सा तक ख़र्च हो जाता है, वे क़र्ज़दार बन जाते हैं। मज़दूरों के लिए एक बहुत बड़ी चिंता की बात यह भी होती है कि उनके ठीक होने के बाद उन्हें कोई काम मिलेगा या नहीं।

ई.एस.आई. सुविधाओं के प्रति कंपनियों का रवैया

मज़दूरों के एक हिस्से को संघर्षों द्वारा ई.एस.आई. सुविधाएँ मिली हुई हैं। अगर कोई मज़दूर या उसके परिवार का सदस्य बीमार हो जाए या उसके साथ कोई हादसा हो जाए तो ऐसे समय में ई.एस.आई.सी. विभाग द्वारा उसका इलाज करवाया जाता है। मज़दूर के साथ हादसे या मौत की सूरत में मुआवज़ा भी दिया जाता है। ई.एस.आई.सी. में मालिक द्वारा मज़दूर के बेसिक वेतन का 4% जमा करवाया जाता है। इसमें से 0.75% हिस्सा मज़दूर के वेतन के काटा जाता है और 3.25% हिस्सा कंपनी मालिक की ओर से होता है। लेकिन मालिक इसे अपना घाटा मानते हुए ज़्यादातर मज़दूरों के ई.एस.आई.सी. कार्ड नहीं बनाए जाते। ज़्यादातर मज़दूरों को ई.एस.आई. सुविधा के बारे में पता भी नहीं होता। इसके कारण अधिकतर मज़दूर ई.एस.आई.सी. कार्ड सुविधा से वंचित रह जाते हैं।

औरत मज़दूरों के हालात

यह पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों की लूट पर टिकी हुई है। मज़दूरों को लगातार निचोड़ा जाता है। मज़दूरों में भी सबसे बुरे हालात औरत मज़दूरों के होते हैं, जिनसे काम तो पूरा लिया जाता है, पर वेतन नाममात्र और पुरुष मज़दूरों के मुक़ाबले बहुत कम दिया जाता है। उत्पादन क्षेत्र में औरत मज़दूरों की गिनती लगातार बढ़ती जा रही है। इन मज़दूर औरतों को फ़ैक्टरी में काम करने के बाद घर के भी सारे काम करने पड़ते हैं यानी कि औरत मज़दूर पर दोहरी मार पड़ती है। ऑटोमोबाइल क्षेत्र में अक्सर औरत मज़दूरों को हेल्पर के तौर पर कंपनी में रखा जाता है, फिर थोड़े दिन काम करने के बाद औरत मज़दूरों को पावर-प्रेस मशीनों को चलाने के लिए कहा जाता है। वह भी बिना किसी ट्रेनिंग के। अगर कोई यह काम करने से मना कर देती है, तो बिना नोटिस के उसे काम से निकाल दिया जाता है। रिपोर्ट के हिसाब से कुछ औरतों ने बताया कि अगर वे बाथरूम जाना चाहें, तो उस पर भी अक्सर सुपरवाइज़रों द्वारा सुनाया जाता है। अगर ऑटोमोबाइल क्षेत्र में एक हेल्पर को मिलने वाली तनख़्वाह 10 से 11 हज़ार होती है, तो औरतों को 7 से 8 हज़ार ही दिया जाता है। औरतों के सस्ते श्रम से पूँजीपति लूट और ज़्यादा बढ़ाते हैं।

इसलिए हम देख सकते हैं कि बाहर से चमकते ऑटोमोबाइल क्षेत्र के मज़दूरों की हालत कितनी चिंताजनक है। इसी तरह दूसरे क्षेत्र के आम मज़दूरों की हालत भी अच्छी नहीं है। इन बदतर हालतों को मज़दूर की एकता ही बदल सकती है। इसलिए मालिक, मज़दूरों की यूनियन बनने से डरते हैं। अगर मज़दूरों की यूनियन होगी, तो संगठित होकर अपनी माँगों को उठाया जा सकता है और मज़दूरों के जीवन-हालातों में कुछ हद तक सुधार किए जा सकते हैं। लेकिन जब तक पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था कायम है, तब तक मज़दूरों की ज़िंदगियों को बुनियादी तौर पर नहीं बदला जा सकता। इसलिए मज़दूरों को अपनी एकता के बल पर संघर्ष करके इस पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करके मज़दूर राज यानी समाजवादी राज्य की स्थापना के लिए आगे बढ़ना होगा।

– **हर्ष**, चंडीगढ़

बेंगलुरु का पानी संकट – मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था का नतीजा

बेंगलुरु, जिसे किसी समय झीलों का शहर कहा जाता था, आज पानी के भयानक संकट से जूझ रहा है। ना सिर्फ़ बेंगलुरु बल्कि पूरे कर्नाटक और इसके साथ लगते तेलंगाना और महाराष्ट्र के इलाक़ों में लोग पानी की किल्लत से जूझ रहे हैं। 18 मार्च को आए सरकारी बयान के मुताबिक़, केवल बेंगलुरु शहर इस समय 50 करोड़ लीटर प्रतिदिन पानी की कमी झेल रहा है। इस दौरान वॉटर टैंकरों की माँग लगातार बढ़ रही है, जिससे पानी के कारोबारी बेशुमार पैसा कमा रहे हैं। एक 12000 लीटर के टैंकर की क़ीमत 1200 से बढ़कर 2850 हो गई है। शहर के ही एक निवासी का कहना है, "हमारा छ: सदस्यों का परिवार है, बहुत सावधानी से इस्तेमाल करने पर भी एक टैंकर पाँच दिन ही निकालता है। जिसका मतलब है कि हमें एक महीने में छः टैंकर चाहिए। जिसका ख़र्चा दस हज़ार से भी बढ़ जाएगा, हम कितना समय इतने पैसे ख़र्च कर पाएँगे।" कहने की ज़रूरत नहीं कि शहर की ग़रीब बस्तियाँ इस संकट का सबसे ज़्यादा बोझ झेल रही हैं। उनका 75 प्रतिशत वेतन पानी जुटाने पर ख़र्च हो रहा है।

इस संकट के हालिया कारणों के पीछे एक साल में आम से कम वर्षा होना और भूजल की कमी होना बताए जा रहे हैं। वैल लैबस नामक एक संस्था ने बेंगलुरु की लगभग 1.3 करोड़ आबादी के हिसाब से एक रिपोर्ट जारी की है। इसके मुताबिक़ शहर में पानी की प्रति व्यक्ति औसत खपत 150 लीटर प्रतिदिन है। इस हिसाब से शहर में पानी की माँग लगभग 263.20 करोड़ लीटर प्रतिदिन है। 140 करोड़ लीटर पानी कावेरी नदी से पहुँचता है और 137.20 करोड़ भूजल से प्राप्त किया जाता है, जो कि कुल माँग का लगभग आधा है। कहा जा रहा है कि 'अल नीनो' प्रभाव के कारण पिछले साल बेंगलुरु में बारिश कम हुई है, जिसके कारण धरती के नीचे के पानी का स्तर काफ़ी गिर गया है। शहर के किनारे पर रहने वाली ग़रीब आबादी तक कावेरी का पानी कम ही पहुँचता है और यह ज़्यादातर टैंकरों और निजी बोरवैलों पर यानी भूजल पर निर्भर हैं। इन निजी बोरवैलों, टैंकरों और कुओं से भूजल निकालने वालों में बहुसंख्य निजी कंपनियों की ही है। सरकारी काग़ज़ों में केवल 108 बोरवेल दर्ज हैं, लेकिन सरकारी निरीक्षण की कमी के कारण हज़ारों बोरवेल रियल एस्टेट वालों, निजी संस्थाओं, आई.टी. पार्कों द्वारा निकले गए हैं, जो कि ग़ैर-क़ानूनी हैं। इसलिए भूजल उसी मात्रा में वापिस धरती में नहीं जाता, जिस मात्रा में निकाला जाता है। प्रकृतिक तौर पर भूजल के वापिस जाने की मात्रा सिर्फ़ 14.8 करोड़ लीटर प्रतिदिन है यानी रोज़ाना प्रयोग का केवल 6-7 प्रतिशत।

दूसरा अंधाधुंध शहरीकरण ने शहर में पेड़-पौधों का बड़े स्तर पर सफाया कर दिया है। शहरों में पेड़-पौधों की गिनती 2010 में 28% थी, जो कम होकर 2023 में 2.9% ही रह गई है। यह सीधा-सीधा रियल एस्टेट पूँजीपतियों और भूमाफ़िया द्वारा अपने मुनाफ़ों की खातिर की गई तबाही है, जिसका नतीजा आज शहर के आम लोग भुगत रहे हैं। पेड़-पौधों की कमी के कारण पानी के वापिस धरती में जाने में दिक़्क़त आती है, जिसका नतीजा आज हमारे सामने तकरीबन 45% वर्षा का पानी बहकर नदियों और फिर झीलों में चला जाता है, परंतु ये झीलें कारख़ानों से

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

निकले ज़हरीले रसायनों या गंदे पानी से भरी होती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की तबाही का नतीजा है कि इन झीलों और जल स्रोतों में बड़ी मात्रा में रसायन और दूसरा ओद्यौगिक कचरा फेंक-फेंककर इन्हें इतना प्रदूषित कर दिया गया है कि इनमें से ज़्यादातर का पानी पीने लायक नहीं रहा है।

जैसा कि हमने शुरू में ज़िक्र किया था कि किसी समय बेंगलुरु को 'झीलों का शहर' कहा जाता था। शहर में किसी समय हज़ार झीलें थीं। 1970 के दशक में भी 285 झीलें थी, परंतु आज पूँजीपतियों की हवस और लुटेरी सरकारों की मिलीभगत का नतीजा है कि बेंगलुरु में झीलों की गिनती केवल 173 रह गई है। बाक़ी सभी को रियल एस्टेट के पूँजीपतियों ने मिट्टी से भरकर ऊँची इमारतें और कालोनियाँ बना दी हैं। पहले ये झीलें भारी वर्षा के दौरान बाढ़ रोकने में मददगार साबित होती थीं और ऊपर तक भर जाती थीं, जिससे पानी भी भविष्य के लिए स्टोर हो जाता था, परंतु आज इन झीलों में जा रहा आधे से ज़्यादा पानी गंदा और रासायनिक होता है, जो पीने लायक नहीं। इससे सीधम-सीधा पीने वाले पानी का धंधा भी जुड़ गया है। पहले प्रकृतिक जल स्रोतों के रूप में मुफ़्त में मिलने वाले इस प्रकृतिक तोहफ़े पर अब बड़ी कंपनियों का क़ब्ज़ा हो चुका है, जो बोतल बंद पानी बेचकर करोड़ों-अरबों रुपया कमा रही हैं।

इसलिए पूँजीवादी शहरीकरण की बेंगलुरु जैसे शहर पर दोहरी मार पड़ी है – झीलें बंद कर देने के कारण बरसातों में शहर में भारी बारिश के समय बाढ़ जैसी स्थिति बन जाती है और दूसरी तरफ़ प्रकृतिक पानी के स्रोत सूखने के कारण गर्मियों में पीने वाले पानी की भारी किल्लत हो जाती है। ये बिल्कुल दो तरह की परिघटनाएँ सीधा-सीधा पूँजीवादी शहरीकरण की ग़ैर-योजनाबंदी और बेतरतीबी का नतीजा है।

आज कर्नाटक, ख़ासकर बेंगलुरु में जो पानी की किल्लत आ रही है, इसका मुख्य कारण ये मौजूदा आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था है। पूँजीपतियों की मुनाफ़े की होड़ दिनों-दिन तेज़ हो रही है, जिसने पानी, हवा, ज़मीन जैसे प्रकृतिक संसाधनों को भी बर्बाद करके रख दिया है। इस संकट का सबसे ज़्यादा बोझ तो ग़रीब मेहनतकश आबादी पर ही पड़ता है, जिस तक अक्सर ना तो शुद्ध पानी पहुँचता है, और ना ही उनके पास पानी के टैंकर ख़रीदने के लिए पैसे होते हैं। लेकिन दूसरी तरफ़ प्रशासन शहर के अमीर इलाक़ों, बड़े होटलों-रेस्टोरेंटों आदि के लिए पानी की पूर्ति सबसे पहले करता है। कारख़ानों के ज़रिए होती पानी की बर्बादी के अलावा मुट्ठी-भर धन्नासेठ गाड़ियाँ धोने के लिए, पूल पार्टियों आदि के लिए अंधाधुंध पानी बर्बाद करते हैं। हालात ये हो गए हैं कि अगर मुनाफ़े के पगलाए दैंत को नकेल नहीं डाली गई, तो जल्द ही भारत के छः और बड़े शहरों मुंबई, जयपुर, बठिंडा, लखनऊ, चेन्नई और दिल्ली को भी ऐसे संकट का सामना करना पड़ सकता है। लाजिमी तौर पर इसकी सबसे ज़्यादा मार तो मेहनतकश जनता पर ही पड़ेगी। इस तरह यह पूँजीवादी ढाँचा आम लोगों को अच्छे हवा-पानी से भी वंचित बना रहा है। इस ढाँचे को ख़त्म करके ही सबके साझे प्रकृतिक स्रोत-संसाधनों को बचाया जा सकता है।

– जोबन

चुनावी बांड खुलासों से पूँजीवादी चुनावी खेल एक बार फिर हुआ बेपर्द!

(पन्ना 1 से आगे)

आधी रक़म सिर्फ़ भाजपा के पास गई है और बाक़ी आधी अन्य सभी पार्टियों के पास।

भाजपा की वाशिंग मशीन से सिर्फ़ दूसरी पार्टियों के भ्रष्टाचारी नेताओं को अपने में मिलाकर "सदाचारी" नेता नहीं बनाया जाता, बल्कि इस वाशिंग मशीन में कंपनियों की भी धुलाई होती है। भाजपा को 2,592 करोड़ रुपए देने वाली 41 कंपनियों पर सी.बी.आई, ई.डी. और इनकम टैक्स विभाग द्वारा छापे मारे गए हैं। ये करोड़ों रुपए इन छापों के बाद ही इन्होंने भाजपा को दिए हैं। इस 2,592 करोड़ में से 1853 करोड़ तो छापे के तुरंत बाद ही भेज दिए गए थे। यानी भाजपा को मिले ये चुनावी चंदे असल में डरा-धमकाकर की गई वसूली भी है। चंदा देने के बाद छापे बंद हो गए। कंपनियाँ कदाचारी से सदाचारी हो गईं। कमल सरकार का एक और कमाल देखिए। विभिन्न पार्टियों को फ़र्ज़ी कंपनियों, जिनका असल में कोई वजूद ही नहीं!, के ज़रिए 543 करोड़ रुपए आए हैं, जिनमें से सिर्फ़ भाजपा को ही 16 कंपनियों से 419 करोड़ रुपए मिले हैं।

यह तो सिर्फ़ वो चंदा है, जो चुनावी बांड के ज़रिए हासिल हुआ है। जो चंदा बिना किसी लिखत-पढ़त के बक्से भर-भरके इन पार्टियों को हासिल होता है, वो इससे अलग है। इसलिए पूँजीवादी पार्टियों और पूँजीपतियों की रंगरलियों का अंदाज़ा सिर्फ़ चुनावी बांड से लगाने की ग़लती ना करिएगा। यह तो चुनावी चंदे के गोरखधंधे का सिर्फ़ एक पहलू है जिसने इसकी पोल खोलने का काम किया है।

इस योजना के ज़रिए जहाँ पूँजीवादी पार्टियों के पूँजीपतियों की रखैल होने की घिनौनी सच्चाई पर पर्दा डालने की कोशिश हुई थी, वहीं इसे काले धन के लेन-देन का साधन भी बनाया गया। वैसे तो पूँजीपतियों का कुल धन ही काला होता है, जो मज़दूरों की लूट से आता है, लेकिन पूँजीवादी क़ानून श्रम की लूट पर पर्दा डालता है और टैक्स चोरी, ग़ैर-क़ानूनी कारोबार, रिश्वतखोरी, घोटाले आदि से जुटाए गए धन को ही काला धन बताता है। पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा परिभाषित काला धन कुल काले धन का ही एक छोटा-सा हिस्सा होता है। इस काले धन में से पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों को चंदा देने के लिए चुनावी बांड योजना से पूँजीपतियों-भ्रष्टाचारियों को ख़ूब मदद मिली, क्योंकि इसमें सबकुछ गुप्त रखा गया था। दूसरा, तथाकथित सफ़ेद धन में से दिए गए चंदे की रक़म पर टैक्स की छूट भी मिली।

चुनावी बांड खुलासे बताते हैं कि जनता द्वारा सरकार चुने जाने की सारी बातें झूठ हैं। चुनावी बांडों संबंधी खुलासों से एक बार फिर इस बात की पुष्टि हुई है कि चुनावों का फ़ैसला पूँजीपति घरानों द्वारा अपने हितों के अनुसार दिए जाने वाले चंदे से होता है। जिसे ज़्यादा चंदा मिलता है, आमतौर पर वही चुनाव जीतता है। अगर मुक़ाबलतन कम चंदा हासिल करने वाली पार्टी या पार्टियों के गठबंधन की भी जीत हो जाती है, तब भी सरकार तो पूँजीपतियों की ही बनती है। पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों के लिए आम जनता महज़ वोट बैंक है। पूँजीपति उनका नोट बैंक हैं, जिसके सहारे वे चुनाव लड़ते हैं। सरकारें उन पूँजीवादी घरानों, कंपनियों को फ़ायदे पहुँचाने वाले फ़ैसले करती हैं और नीतियाँ बनाती हैं, जिनसे उन्हें बड़ी मात्रा में चंदे मिले होते हैं।

सुप्रीम कोर्ट में भारत की मोदी सरकार ने बेशर्मी से कहा है कि नागरिकों को चुनावी बांडों से संबंधित जानकारी प्राप्त करने का कोई बुनियादी अधिकार नहीं है, कि चंदा देने वाली कंपनियों और व्यक्तियों के नाम जाहिर होने पर उनके निजता के अधिकार का उल्लंघन होगा। यानी इसे जनता के अधिकारों से ज़्यादा चिंता पूँजीपतियों के तथाकथित अधिकारों की है। जानकारी हासिल करना जनता का जनवादी अधिकार है। उसे पता होना चाहिए कि जो पार्टियाँ उससे वोट माँग रही हैं, उसके वोटों से सरकार बना रही हैं, उनका आर्थिक स्रोत क्या है। उसे यह जानने का अधिकार है कि किस पार्टी का किस पूँजीपति से कैसा संबंध है, कि कौन पार्टी उसके हितों के लिए है और कौन उसके दुश्मनों के हितों के लिए है। मोदी सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में की गई बातें इतनी बेसिर-पैर की थीं कि सुप्रीम कोर्ट को भी इन्हें सिरे से रद्द करना पड़ा।

इस मोदी योजना का एक और खेल देखिए। चुनाव बांडों के ज़रिए जहाँ एक ओर काले धन को सफ़ेद बनाया गया और हुक्मरान वर्गीय पार्टियों ने मोटा चंदा प्राप्त किया, वहीं चुनाव बांड योजना के लागत ख़र्चे का सारा बोझ जनता पर लाद दिया गया। दान दी गई रक़म पर ना पूँजीपति और ना दान लेने वाली राजनीतिक पार्टी को कोई टैक्स लगाया गया। इन चुनाव बांडों की छपाई और अन्य प्रक्रिया पर काफ़ी ख़र्चा हुआ। भारतीय स्टेट बैंक ने मार्च 2018 से मई 2019 के बीच 10 किश्तों में 5,832 करोड़ रुपए के बांडों की बिक्री के लिए वित्त मंत्रालय को 3.24 करोड़ रुपए का हुआ ख़र्चा देने के लिए कहा है। लेकिन वित्त मंत्रालय का कहना था कि इसके लिए ना तो दानी और ना ही दान लेने वाला कोई पैसा नहीं देगा, बल्कि यह ख़र्चा चुनाव बांडों को जारी करने वाली संस्था, यानी भारतीय स्टेट बैंक को ही देना पड़ेगा।

चुनावी बांड योजना के बहाने पूँजीवादी लोकतंत्र का असल चेहरा एक बार फिर सामने आया है। इससे यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया है कि किसी भी पूँजीवादी पार्टी से जनता की भलाई की उम्मीद करने का कोई फ़ायदा नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था में चुनावों का खेल जनता को मूर्ख बनाने के लिए खेला जाता है। इसलिए पूँजीवादी लोकतंत्र और पूँजीवादी पार्टियों से मेहनतकश जनता की कोई भी उम्मीद ना रखकर हमें मज़दूर वर्ग की विशाल एकता बनाने के लिए ज़ोर लगाना होगा। मज़दूर वर्ग के विशाल आंदोलन खड़े करने होंगे। अपने छोटे-मोटे काम-धंधे करने वाले अन्य मेहनतकशों को मज़बूती से अपने साथ लेना होगा। इस प्रक्रिया के दौरान मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण भी करना होगा, क्योंकि मज़दूर वर्ग के फौलादी नेतृत्वकारी दस्ते के बिना पूँजीवादी लूटतंत्र के ख़िलाफ़ लड़ाई का आगे बढ़ा पाना और अंजाम तक पहुँच पाना संभव नहीं है। आज हमें समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था की ज़रूरत है, जो मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे से ही संभव है। पूँजीवादी व्यवस्था का ख़ात्मा मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में सभी मेहनतकशों की राजनीतिक क्रांति के बिना नहीं हो सकता। लेकिन मज़दूर वर्ग भी अपनी क्रांतिकारी पार्टी के बिना इस ऐतिहासिक कार्यभार को अंजाम नहीं दे सकता।

जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम की वर्षगाँठ (13 अप्रैल) के अवसर पर

जलियाँवाला बाग़ की ख़ून से भीगी मिट्टी की महक़ दिलों में बसाकर समाजवादी समाज के निर्माण की लड़ाई तेज़ करो!

आने वाली 13 अप्रैल को बैसाखी वाले दिन जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम की बरसी है। इस दिन जालिम उपनिवेशवादी अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा भारत की आज़ादी के आंदोलन को लूह के सागर में डुबाने की कोशिश की गई। इस क़त्लेआम का भारत की आज़ादी की लड़ाई में अहम स्थान है। इस घटना ने अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद की दरिंदगी को उजागर करते हुए, उपनिवेशवादी हुकूमत से मुक्ति की लड़ाई तेज़ कर दी और आज एक सदी से भी ज़्यादा समय गुज़र जाने पर भी शोषण-उत्पीड़न के ख़िलाफ़ चल रही लड़ाई में एक अहम स्थान रखती है। जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम के शहीदों की क़ुर्बानियाँ संघर्ष के लिए प्रेरणा और आत्म बलिदान की भावना का बड़ा स्रोत हैं।

पगड़ी सँभाल जट्टा आंदोलन और ग़दर लहर के बाद पहले विश्व युद्ध के बाद देश के लोगों में अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति गुस्सा अंगड़ाइयाँ भरने लगा था। औपनिवेशिक लूट और उत्पीड़न जारी रखने के लिए अंग्रेज़ी शासकों ने भारत सुरक्षा क़ानून का इस्तेमाल किया था। भारत के लोगों के गुस्से को देखते हुए अपने दमनकारी प्रशासकीय ढाँचे को जंग के अरसे के दौरान दी छूट को अंग्रेज़ी हुकूमत जारी रखना चाहती थी। अंग्रेज़ हुक्मरानों ने क्रांतिकारी गतिविधियों को दबाने के लिए जस्टिस सिडनी रोलट के नेतृत्व में एक कमीशन कायम किया, जिसकी सिफ़ारिशों के आधार पर 6 फ़रवरी 1919 को इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में सरकार द्वारा दो बिल पेश किए गए। उनमें से एक बिल 'अराजकतावादी और क्रांतिकारी अपराध क़ानून' 18 मार्च 1919 को पारित कर दिया गया। इस क़ानून को ही रोलट एक्ट के नाम से जाना जाता है। इस क़ानून द्वारा पुलिस और फ़ौज की शक्तियों में भारी इज़ाफ़ा किया गया था और अपराधों के मामले में अदालती प्रक्रिया की आज़ादी ख़त्म कर दी गई थी। इस क़ानून के विरुद्ध सारे भारत ख़ासकर पंजाब में तीखे विरोध ने जन्म लिया।

पंजाब असहयोग आंदोलन का बड़ा केंद्र बन गया था। क़ानून के विरोध के लिए पूरे मुल्क़ स्तर पर 6 अप्रैल का दिन तय किया गया। इसके तहत 30 मार्च को ही अमृतसर में इस क़ानून का ज़बरदस्त विरोध देखने को मिला। जब रैली में तीस हज़ार से अधिक लोगों ने प्रदर्शनों में शमूलियत की। इन प्रदर्शनों में बड़ी संख्या में औरतें भी शामिल हुईं। 6 अप्रैल के दिन को भी लाहौर और नज़दीकी अमृतसर शहर दोनों में बेमिसाल भीड़ उमड़ी। इसके अलावा रावलपिंडी, गुजराँवाला, सियालकोट, जलंधर, लुधियाणा, अंबाला आदि शहरों में भी बड़ी रैलियाँ हुईं। रोलट एक्ट का विरोध बहुत व्यापक था। इन प्रदर्शनों में सिखों, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मिसाली भाईचारा कायम हुआ। इसके बाद 9 अप्रैल को रामनवमी के अवसर पर इन संप्रदायों के बीच भाईचारा और ज़्यादा मज़बूत हुआ, जब बड़ी संख्या में मुसलमानों और सिखों ने इस हिंदू त्योहार में भाग लिया और एक-दूसरे के बर्तनों से पानी भी पिया और पगड़ी पहनी। लाहौर की बादशाही मस्जिद से भी विशाल जनसमूह को पहली बार किसी हिंदू हरकिशन लाल ने संबोधित किया। लोगों के दरमियान इस बेमिसाल सांप्रदायिक एकता ने अंग्रेज़ों को चिंतित कर दिया और हर हालत में इस आंदोलन को आगे बढ़ने से रोकने की कोशिशें करने लगे।

अमृतसर रैली के नेता डॉ. सैफ़ुद्दीन किचलू और डॉ. सतपाल को गिरफ़्तार कर धर्मशाला जेल भेज दिया गया। इन गिरफ़्तारियों की ख़बर मिलते ही लाहौर और अमृतसर के लोगों ने उसी दिन हड़ताल का ऐलान कर दिया। इतनी बड़ी प्रतिक्रिया देखकर अंग्रेज़ बौखला गए और उसने सभा पर गोलियाँ चलाने के हुक्म दिए। तकरीबन 25 लोग मारे गए, जिसमें 5 अंग्रेज़ लोगों की भीड़ ने मार गिराए। हड़तालियों ने अंग्रेज़ों के ज़ुल्म का जवाब देते हुए बैंक, डाकखानों और रेलवे स्टेशनों पर हमले किए। 10 अप्रैल की इन घटनाओं के बाद यह साफ़ हो गया कि पंजाब के लोग गांधी के सत्याग्रह की हदों से पार जा चुके हैं। इसी दिन लाहौर में चनन दीन की अगुवाई में हज़ारों की संख्या में लोगों द्वारा किया गया डंडा मार्च इस बात की गवाही देता है। लोगों ने अंग्रेज़ों के शांतिपूर्ण विरोध से आगे बढ़कर राज-काज और प्रशासन के सवालों पर विचार करना शुरू कर दिया था। हड़तालियों के समर्थन में लाहौर के चार हज़ार से अधिक रेलवे कर्मचारी हड़ताल पर चले गए थे। छावनी में भी सेना के विद्रोह की ख़बरें आ रही थीं। 10 से 13 अप्रैल तक लाहौर में अंग्रेज़ों का शासन नहीं चला।

हालात पर क़ाबू पाने के लिए अंग्रेज़ राज्यपाल माइकल ओडवायर ने 11 अप्रैल को जलंधर छावनी से जनरल डायर को बुलाया और 12 अप्रैल को पूरे लाहौर और अमृतसर में मार्शल ला लगा दिया गया। लेकिन 12 को डॉ. किचलू और सतपाल की गिरफ़्तारियों का विरोध करने के किए मीटिंग बुलाई गई। 13 अप्रैल की सुबह, अंग्रेज़ों द्वारा किसी भी प्रकार की सभा पर रोक लगाते हुए एक प्रतिबंध जारी किया गया। लेकिन जलियाँवाला बाग़ में बैसाखी के दिन इकट्ठा हुए लोग इस बात से बिल्कुल अनजान थे। अंग्रेज़ी हुकूमत इस बात से भलीभाँति परिचित थी कि त्योहार के दिन पंजाब के लोग पास में स्थित धार्मिक स्थान हरिमंदर साहिब में बड़ी संख्या में आएँगे। इसलिए लोगों को सबक़ सिखाने के मक़सद से जानबूझकर क़त्लेआम का यह दिन चुना गया। इस दिन जनरल डायर अपने पचास सैनिकों के साथ तंग गली में से होते हुए जलियाँवाला बाग़ में दाख़िल हुआ। उसने काले क़ानूनों के विरुद्ध चल रही इस मीटिंग को शांतिपूर्वक सुन रहे निहत्थे लोगों की भीड़ पर बेरहमी से गोलियाँ चलाने का आदेश दिया। डायर ने अपने हलफ़नामे में यह क़बूला कि अगर मशीनगन से लदी दो गाड़ियाँ आ सकती, तो वह उनका भी इस्तेमाल करता, उसका मक़सद सिर्फ़ इकट्ठे हुए लोगों को मारना नहीं, बल्कि पूरे पंजाब के लोगों में दहशत पैदा करना था। इस दिन कुल 1800 लोगों ने जान गँवाई और सैकड़ों लोग जखमी हुए।

लेकिन अंग्रेज़ शासकों की भारत की जंग-ए-आज़ादी के आंदोलन को रोकने की कोशिश नाकामयाब हुई। बल्कि आज़ादी के लिए संघर्ष और भी तेज़ प्रचंड हो गया। पंजाब में जलियाँवाला बाग़ के क़त्लेआम के बाद चले आज़ादी के अनेकों आंदोलन – बब्बर अकाली आंदोलन, मज़दूर आंदोलन, भगतसिंह और उसके साथियों का आंदोलन, प्रजा मंडल आंदोलन आदि आंदोलन इस बात के गवाह हैं।

जलियाँवाला बाग़ का क़त्लेआम इतिहास में अंग्रेज़ी साम्राज्यवादियों द्वारा हमारे लोगों पर किए गए ज़ुल्मों के चरम का प्रतीक बना रहा है, लेकिन साथ ही में यह उस दौर में अंगड़ाई ले रही उपनिवेशवाद से मुक्ति की भावना के तहत लोगों की क़ुर्बानी के जज़्बे का भी प्रतीक बना है। जहाँ अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों से त्रस्त भारत के लोगों के सबर के बाँध टूट गए और अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ जन आक्रोश की देश स्तरीय श्रृंखला शुरू हो गई। लोग और ज़्यादा गुस्से और दृढ़ता से आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े। यह क़त्लेआम शहीद-ए-आज़म भगतसिंह और उनके साथियों जैसे क्रांतिकारी नायकों के संग्रामी सफ़रों का शुरुआती बिंदू बन गया था। इस क़त्लेआम ने अंग्रेज़ों से मुक्ति के संग्राम में आग में घी डालने का काम किया और आज़ादी का संग्राम नई ऊँचाइयों पर पहुँच गया। जिसके फलस्वरूप 1947 में अंग्रेज़ों को भारत छोड़कर जाना पड़ा।

1947 की आज़ादी के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में भारतीय पूँजीपतियों ने सत्ता अपने हाथ में ले ली। देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी कठिनाइयों भरा जीवन जी रही

(पन्ना 3 पर जारी)

मालिक, प्रकाशक और मुद्रक रविंदर कौर द्वारा न्यू दशमेश प्रिंटर्ज, पता – 178-179, रणजीत नगर, जलंधर, पंजाब–144001 से मुद्रित और
उन्हीं द्वारा म.नं. 212, वी.पी.ओ. – पखोवाल, तहसील – रायकोट, ज़िला – लुधियाणा, पंजाब – 141108 से प्रकाशित। संपादक – लखविंदर सिंह